समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार का मासिक

उत्तर प्रदेश

मई—2024, वर्ष 49

₹ 15/-

अनुजीत इकबाल की एक कविता

संकेत

कोई कभी नहीं जान पाएगा कि
क्या हुआ था उन दिनों में
जब तुम मन को सहलाते हुए
उसके अंधेरे कोनों में पनाह ले रहे थे
ठीक वैसे ही
जैसे लावा समुद्र में खोज लेता है अपना स्थान
तुम्हारे पैरों के निशान
जीवन पर नजर आने लगे थे
ठीक उसी तरह जैसे
प्रागैतिहासिक काल ने
अपने साक्ष्य भित्तिचित्रों पर छोड़े थे
या फिर जैसे मछलियां
दलदले पानी पर
स्वयं को अंकित करती हैं
या पंछी हवाओं में छोड़ते हैं
अपने होने के संकेत
सूर्य रश्मियां नर्तन करती
देह को भेद कर प्रविष्ट हो जातीं
मन के उस रहस्यमयी कोष्ठ में
जहां तुम पनाह लिए हुए थे
उस घटक या अवयव की तरह
जो ह्रदय की मिट्टी को पोषित करता है
वो मिट्टी, जो कामनाहीन है
श्लिष्ट नहीं होती, चिपकती नहीं
वैराग्य लिए हुए रहती है
मैं इस गूढ़वाद से कभी भाग नहीं पाई
क्योंकि पृथ्वी उतनी ही विस्तृत है
जितनी तुम्हारी हथेली

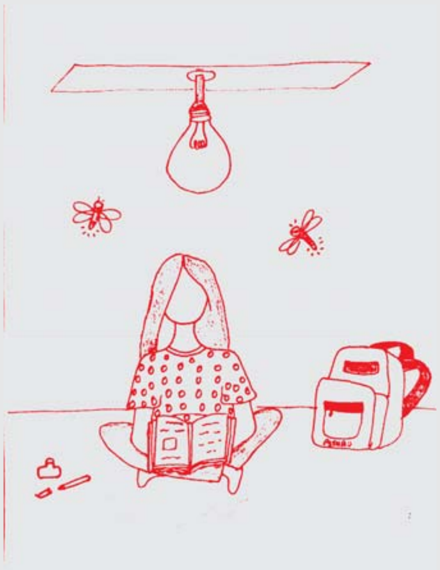

◆

पता : 4 राय रहीम स्टेट, नीलमथा, लखनऊ–226002
मो. : 9919906100

अनुक्रम

लोक कलाएँ

- वारकारी संप्रदाय : धार्मिक लोक कलाएँ ❑ डॉ. योगेश कोरटकर / 3

कहानी

- नादान परिन्दे घर आ जा... ❑ डा. रंजना जायसवाल / 7
- गुबार देखते रहे ❑ डॉ. महनाज़ अनवर / 19

कविताएँ

- अनुजीत इकबाल की एक कविता ❑ /आवरण–2
- उर्वशी उपाध्याय की दो कविताएँ ❑ आवरण–3
- रेणुका अस्थाना की कविताएँ / 23
- अलका अस्थाना की दो कविताएँ / 26

पुस्तक समीक्षा

- यवन चरित–एक पौराणिक पुरोधा के अनुपम चरित्र को... ❑ सुरेन्द्र अग्निहोत्री / 28

उत्तर प्रदेश

❑ वर्ष 49 ❑ अंक 63
❑ मई, 2024

संरक्षक एवं मार्गदर्शक : ❑ **संजय प्रसाद**
प्रमुख सचिव, सूचना

प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी : ❑ **शिशिर**
सूचना निदेशक, उत्तर प्रदेश

सम्पादकीय परामर्श : ❑ **अंशुमान राम त्रिपाठी**
अपर निदेशक, सूचना
❑ **डॉ. मधु ताम्बे**
उपनिदेशक, सूचना
❑ **डॉ. जितेन्द्र प्रताप सिंह**
सहा. निदेशक, सूचना

प्रभारी सम्पादक : ❑ **दिनेश कुमार गुप्ता**
उपसम्पादक, सूचना

अतिथि सम्पादक : ❑ **कुमकुम शर्मा**
आवरण : **अंतरिक्ष**
भीतरी रेखांकन : **सिद्धेश्वर**
सम्पादकीय संपर्क : सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, पं. दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
मो. : 8960000962, 9412674759
ईमेल : upmasik@gmail.com
दूरभाष : कार्यालय : ई.पी.ए.बी.एक्स 0522–2239132–33, 2236198, 2239011

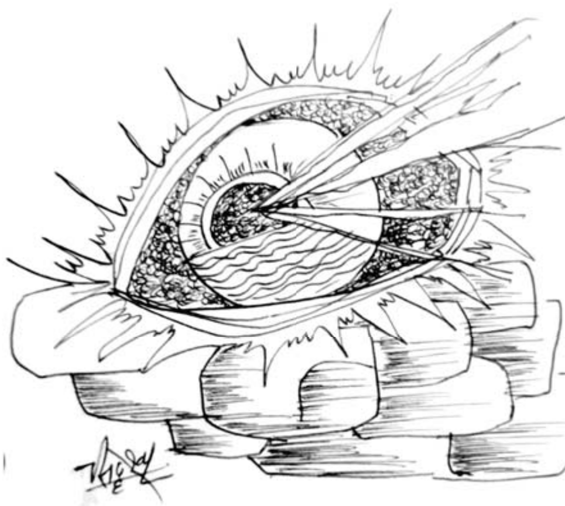

पत्रिका information.up.nic.in वेबसाइट पर उपलब्ध है।

❑ **एक प्रति का मूल्य** : पंद्रह रुपये
❑ **वार्षिक सदस्यता** : एक सौ अस्सी रुपये
❑ **द्विवार्षिक सदस्यता** : तीन सौ साठ रुपये
❑ **त्रैवार्षिक सदस्यता** : पांच सौ चालीस रुपये

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे मासिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' और सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

—सम्पादक

आवर्तन

ज़िन्दगी को
वह गढ़ेंगे जो शिलाएं तोड़ते हैं
जो भगीरथ नीर की निर्भय शिराएं मोड़ते हैं
यज्ञ को इस शक्ति श्रम के श्रेष्ठतम मैं मानता हूं।

ज़िन्दगी के
वह गढ़ेंगे जो खदानें खोदते हैं
लौह के सोए असुर को कर्म रथ में जोतते हैं।
यज्ञ को इस श्रम शक्ति के
श्रेष्ठतम् मैं मानता हूं।

ज़िन्दगी को
वह गढेंगे जो प्रलय को रोकते हैं,
रक्त में रंजित धरा पर शान्ति का पथ खोजते हैं।
यज्ञ को इस शक्ति श्रम के
श्रेष्ठतम मैं मानता हूं।
मैं नया इन्सान हूं इस यज्ञ में सहयोग दूंगा।
खूबसूरत जिन्दगी की नौजवानी भोग लूंगा।

—केदारनाथ अग्रवाल

मई दिवस यानी श्रम और श्रमिक के सम्मान का दिन । इस दिन को मजदूर दिवस या इन्टरनेशनल लेबर डे भी कहा जाता है जिसे हासिल करने के लिए हज़ारों मजदूरों द्वारा एक आन्दोलन किया गया था। मई 1886 को अपने अधिकारों के लिए अमेरिका के शिकागो शहर में मजदूरों ने एकत्रित होकर काम के 8 घंटे निर्धारित करने की तथा हफ्ते में एक दिन छुट्टी की मांग की। इससे पहले मजदूरों के लिए काम करने का कोई समय निर्धारित नहीं था। उनके लिए कोई नियम कायदे नहीं थे, मजदूरों से 15—15 घंटे लगातार काम लिया जाता था। आज से करीब 136 साल पहले शिकागो में यह आन्दोलन शुरू हुआ। बाद में यह प्रदर्शन अत्यन्त उग्र हो गया जिसमें पुलिस की फायरिंग में 4 मजदूरों की मौत हो गई लगभग 100 घायल हो गए। इसके बाद 1889 में पेरिस में हुई इन्टरनेशनल कान्फ्रेंस में मजदूरों के अधिकारों को संरक्षित करते हुए कुछ महत्वपूर्ण फैसले लिए गए। भारत में मजदूर दिवस की शुरूआत 1 मई 1923 को लेबर किसान पार्टी ऑफ हिन्दुस्तान मद्रास (चेन्नई) में हुई । इन आन्दोलन का नेतृत्व वामपंथी व सोशलिस्ट पार्टियों ने किया था। मूल रूप से यह दिन मजदूरों की उपलब्धियों और योगदान पर केन्द्रित है। श्रम समाज का वह हिस्सा है, जिस पर समस्त आर्थिक प्रगति टिकी होती है। किसी भी समाज के प्रगति और विकास के रास्ते श्रम से होकर ही जाते हैं।

सम्पादक

वारकरी संप्रदाय : धार्मिक लोक कलाएँ

❑ डॉ. योगेश कोरटकर

भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषिक विविधताओं के साथ–साथ धार्मिक विविधता भी दिखाई देती है। इस धार्मिक विविधताओं में हिंदू धर्म की बात करें तो वह भारत में सबसे बड़ा वैदिक धर्म है। इस धर्म के अंतर्गत कई सारे संप्रदाय है। जो अपने–अपने इष्ट देवता के प्रति समर्पित है।

महाराष्ट्र में मुख्य रूप से वारकरी संप्रदाय दिखाई देता है। जो भगवान विट्ठल के प्रति समर्पित है। साथ ही इस संप्रदाय में कई सारे संत हुए हैं। जिन्होंने इस संप्रदाय के माध्यम से समाज में चल रहे अनाचार, अनिष्ट रूढ़ी, परंपराओं पर धार्मिक लोक कलाओं से मनोरंजन करते हुए उन पर करारा प्रहार किया है। इन संतों में मुख्य रूप से संत तुकाराम, संत ज्ञानेश्वर, संत एकनाथ को देखा जाता है। इन्होंने वारी/दिंडी, भजन, कीर्तन, भारूड, आदि धार्मिक कलाओं के माध्यम से लोगों को जागृत करने का काम किया है। यह परंपरा आज भी महाराष्ट्र में दिखाई देती है।

दिंडी/वारी :

महाराष्ट्र में धार्मिक दृष्टि से दिंडी या वारी का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। महाराष्ट्र के आराध्य दैवत पंढरपुर के विठोबा के दर्शन के लिए आषाढ़ माह में संपूर्ण महाराष्ट्र के देवी–देवता के भक्त अपने–अपने जत्थे के साथ पैदल यात्रा करते हुए हर वर्ष पंढरपुर यात्रा को जाते हैं। इसी को वारी या दिंडी कहा जाता है। प्रभाकर मांडे के अनुसार, ''देवात्या दृवारी नाचत–नाचत विठ्ठल भक्त गात जातात. त्या सामुहीकपणे जाण्यालाच दिंडी असे म्हणतात.''1 भगवान विठ्ठल के दर्शन को जाते समय सभी विठ्ठल भक्त हरिनाम–कीर्तन तथा नाचते–गाते हुए भगवान विठ्ठल का सामूहिक जयघोष करते हैं। इस सामूहिक यात्रा को ही दिंडी कहा जाता है। दिंडी में संबंधित उस तीर्थक्षेत्र के देवी–देवता तथा संत की चरण पादुकाएँ रहती हैं। उसे पालखी कहा जाता है। इस पालखी को लेकर विठ्ठलभक्त वारी के लिए रवाना होते हैं। 15–20 दिन तक पैदल चलते हुए तब जाकर पंढरपुर

पहुँचते हैं। इस पालखी में गाँव–गाँव से लोग जुट जाते हैं। एक बड़ा भक्तों का जत्था बन जाता है। ऐसी कई पालखियाँ एवं जत्थे होते हैं। जैसे– आळंदी के संत ज्ञानेश्वर की पालखी, त्र्यंबकेश्वर से निवृत्तिनाथ की, सासवड से सोपानदेव की, एदलाबाद से संत मुक्ताबाई की, पैठण से संत एकनाथ की, औंढा से संत विसावा की, तेर से संत गोरोबा की, देहु से संत तुकाराम की, पुणतांबे से चांगदेव की, आदि कई पालखियाँ पंढरपुर के लिए रवाना होती हैं।

वारी तथा दिंडी की एक बहुत बडी विशेषता यह है कि इसमें सभी जाति–धर्मों के लोग सम्मिलित होते हैं। उसमें ऊँच–नीच का भाव नहीं होता है। गरीब से गरीब एवं अमीर से अमीर होने पर भी एक भक्त के रुप में ही उन्हें देखा जाता है। दिंडी में चल रहे सभी भक्तों को 'वारकरी' नाम से संबोधित किया जाता है। दिंडी में कई प्रकार की कलाएँ दिखाई देती हैं। जैसे– वारी नृत्य, भारुड, गौळण, नौटंकी आदि। वारी में सम्मिलित सभी लोग अपना अस्तित्व, अहंभाव छोड़कर स्वावलंबी जीवन यापन करते हैं। दिंडी मनुष्य को अहंकार, अहंभाव से शून्य बनाकर अंतर्मुख होने के लिए बाध्य करती हैं।

दिंडी समता, बंधुता का पुरस्कार करती है। वारकरी के कांधे पर जो पताका है वह एकात्मता, एकता का प्रतीक है। अविवेक से विवेक को जगाती है। अविचारों से सत् विचार की ओर अग्रसर होती है। यही इस दिंडी लोककला की सबसे बड़ी विशेषता है।

दिंडी यह महाराष्ट्र की घुमक्कड रंगभूमि है। इस दिंडी में कई प्रकार की कलाएँ विविध जाति–जनजातियों के वारकरी भक्तोंद्वारा पेश की जाती है। जिसमें प्रमुख रुप से भजन, कीर्तन, नृत्य, गायन, नाट्यदर्शन आदि कलाएँ हैं। इन कलाओं के माध्यम से मनोरंजन के साथ–साथ नामस्मरण, नामसंकीर्तन, आध्यात्म प्रतिपादन किया जाता है।

दिंडी के भक्त वारकरी पुरुषों की वेशभूषा, गले में तुलसीमाला, कंधे पर केसरिया पताका, टाळ (पीतल तथा कांस्य की धातु से बना हुआ वाद्य), माथे पर तिलक (अष्टगंध), धोती, कुरता तथा पायजमा, पहनते हैं। स्त्री वेशभूषा में साड़ी, गले में तुलसीमाला, टाळ, माथे पर कुंकुम–हल्दी, बुक्का (काले रंग का तिलक) सिर पर तुलसी का पौधा।

भारुड :

'भारुड' महाराष्ट्र का प्रचलित लोककला प्रकार एवं लोकनृत्य प्रकार है। इसमें आध्यात्मिकता के साथ ही समाजिक उपदेश होता है। रुपक से धार्मिक और नैतिक ज्ञान प्रदान करने वाली यह लोककला है। जनसाधारण की भाषा में इस कला का प्रचलन तथा मंचन होता है। इस कला के संदर्भ में प्रभाकर मांडे कहते हैं कि, "आध्यात्म प्रतिपादन करताना ते सरळ विधानात्मक स्वरुपात न सांगता रुपकाच्या माध्यमातून सांगणे म्हणजे भारुड होय. ते एक सांग रुपक असते."[2] आध्यात्म का ज्ञान सीधे शब्दों में न बताते हुए रुपकों के माध्यम से प्रतिपादित करना ही भारुड कहलाता है।

''भारुड'' की शुरूवात के बारे में कई मतभेद हैं। परंतु इसकी शुरुआत संत ज्ञानेश्वर से ही मानी जाती है।"[3] संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत तुकाराम आदि महाराष्ट्र के सभी संतों ने 'भारुड' की रचना की है। परंतु भारुड का नाम लेते ही सबसे बड़ा नाम आता है, संत एकनाथ महाराज का इन्होंने ही भारुड को जनसाधारण जाति–जनजाति का विषय बनाया और यहीं से यह लोककला सही अर्थों में सर्वसाधारण लोगों में प्रचलित हुई। इस संदर्भ में रुस्तम अचलखांब कहते हैं कि, "नाथांनी आपल्या प्रतिभेने ही रचना हाताळुन अठरा पगड आखाड्यात वावरनाऱ्या बहुरूपी सारखी केली आहे. म्हणुनच तळागाळातील गोंधळी, डोरी, वैदु, गोपाळ इत्यादि, भटका समाज त्यांनी आपल्या भारुडासाठी वापरला."[4] संत एकनाथ

ने अपने प्रतिभा से भारुड के परंपरागत विषयों से हटकर समाज में बसे घुमंतू जाति जनजाति के बहुरूपों को भारुड का विषय बनाया इसलिए उनके भारुड कला में गोंधळी, डौरी, वैदु, गोपाळ (यह महाराष्ट्र की घुमंतू जनजातियाँ हैं।) आदि घुमंतू जाति देखने को मिलती हैं।

'भारुड' लोककला की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि संत एकनाथ ने लोकसंस्कृति के सभी उपासक इस लोककला में लिए हैं। जैसे वासुदेव, भराडी, गोंधळी, भुत्या, पोतराज, जोशी, वैदीन, दरवेशी, पिंगळा, कोल्हाटी, जोगी, जागल्या आदि उपासकों की लोककला भारुड में समाहित होती है। संत एकनाथ ने लगभग तीन सौ पचास के आसपास भारुड की रचना की है। इसके विषय भी सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अगर इसका वर्गीकरण किया जाए तो वह निम्न प्रकार से होगा। डॉ. रामचंद्र देखने ने इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया है।

"अ) मानवी भूमिका दिखानेवाले भारुड

1) प्रबोधनात्मक मानवी भूमिका दिखाने वाले– उदा : वासुदेव, जोशी, पांगुळ, पिंगळा (महाराष्ट्र की घुमंतू जनजातियाँ)

2) जाति व्यवसाय दिखाने वाले– उदा : भट–भटीन (ब्राम्हण), महार–महारीन (हरिजन), माळी (माली), कंजारीन आदि।

3) शारीरिक व्यंग्य दिखाने वाले– उदा : गूँगा, बहरा, अंधा

4) नाते संबंध दर्शाने वाले– दादला (पति), बायकला, मुलगी (लड़की)

5) सामाजिक वृत्ति के– उदा : चोपदार, जागल्या

ब) देवी–भूमिका तथा भूत पिशाच विषयक भारुड– उदा : महालक्ष्मी, जोगवा, भुत्या आदि।

क) पशु–पक्षी विषयक– उदा : गाय, बिच्छू, एडका (भेड़), पोपट (तोता), बैल, कुत्रे (कुत्ता) आदि

ड) खेळ, सण, उत्सव विषयक भारुड– उदा : होळी (होली), फुगडी, शिमगा, जाते, पिंगा, हमामा, हुतुतु, झोंबी। (महाराष्ट्र के खेल के प्रकार)

इ) घर गृहस्थी–व्यवहार संबंधी– उदा : व्यापार, नीति, थट्टा, संसार, बाज़ार, सासुरवास।"

उपरोक्त दिये हुए सभी 'भारुड' के विषय सामाजिक, लोकसंस्कृति एवं लोककला का अंग है। इन सब विषय को संत एकनाथ ने भारुड के माध्यम से पिरोया है। आज यह लोककला हर क्षेत्र में देखने को मिलती है। इस लोककला का अपना स्वतंत्र रंगमंच है जो काफी प्रचलित है। आज के इस आधुनिक युग में यह कला समाज में चल रहे नए–नए विषय को अभिव्यक्त कर रही है। जैसे परिवार नियोजन, दहेज का शिकार, बेरोजगारी, व्यसनाधीनता आदि। इससे यह पता चलता है कि यह लोककला आज भी समाजप्रबोधन का काम कर रही है।

कीर्तन

कीर्तन की परंपरा वैदिक काल से चली आ रही है। समुचे भारत में इसके अलग–अलग अर्थ एवं प्रकार दिखाई देते है। कर्नाटक में कीर्तन को भक्ति संगीत के रुप में देखा जाता है। तो बंगाल में इसे लोकनृत्य के रुप में देखा जाता है। सांस्कृतिक दृष्टि से कीर्तन को बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। नवविधा भक्ति में कीर्तन का दूसरा क्रमांक आता है। इससे पता चलता है कि कीर्तन की परंपरा कितनी पुरानी है। हिंदू धर्म में ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए सामूहिक माध्यम कीर्तन रहा है।

महाराष्ट्र में कीर्तन का अपना अलग महत्व है। इस संदर्भ में रुस्तुम आचलखांब कहते हैं कि, "गायन, वादन आणि नर्तन करुन ईश्वराचे गुण कथन करने हा कीर्तनाचा मुळ हेतु असला तरी महाराष्ट्रात यादव काळापासून इंग्रेजी

अमदानी पर्यंत कीर्तनाने केवळ धर्मजागरणाचे कार्य केले नाही तर संस्कृति रक्षणाचे आणि राष्ट्रो/दाराचे फार मोठे कार्य केले आहे."[6] गायन, वादन और नृत्य करके ईश्वर का नामस्मरण करना यह कीर्तन का मुख्य उद्देश्य है। इसके अलावा महाराष्ट्र में यादव काल से लेकर अंग्रेजों के शासनकाल तक कीर्तन ने न सिर्फ धर्मजागृति की इसके साथ संस्कृति रक्षण तथा राष्ट्रोद्धार का कार्य किया है। इससे यह पता चलता है कि कीर्तन इस लोककला से महाराष्ट्र ने न केवल धार्मिकता को बढ़ावा दिया इसके साथ ही साथ राष्ट्रोद्धार संस्कृति जतन तथा समाजप्रबोधन का भी बहुत बड़ा कार्य किया है।

'कीर्तन' को महाराष्ट्र में सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। इसके दो प्रकार दिखाई देते है। 1)

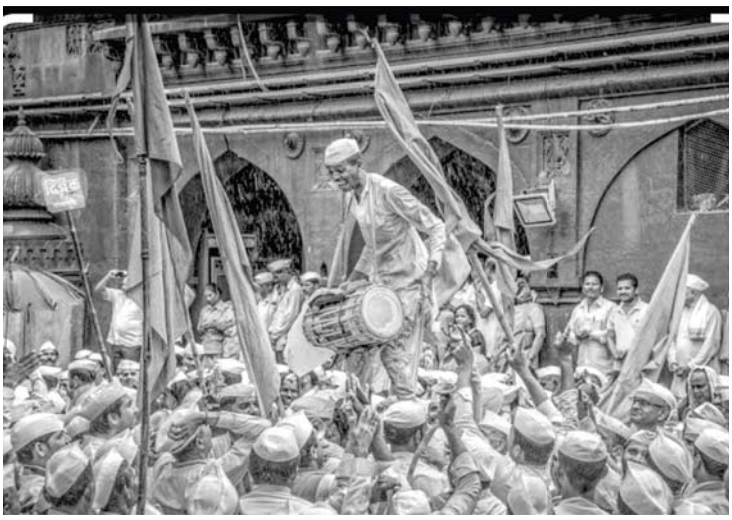

नारदीय कीर्तन, 2) वारकरी कीर्तन। नारदीय कीर्तन में तंबारो एवं हार्मोनियम का ज़्यादातर प्रयोग होता है। तो दूसरी ओर वारकरी कीर्तन में वीणा, पखवाद और टाळ (तांबे के धातु से बना हुआ वाद्य) का प्रयोग होता है। ज़्यादातर वारकरी कीर्तन ही महाराष्ट्र में सबसे ज्यादा प्रचलित है। यह एक एकपात्री नाट्य प्रयोग है। इस कीर्तन में मुख्य कीर्तन करने वाला कीर्तनकार रहता है। उसे 'महाराज' कहते है और उसे जो साथ देने वाले होते हैं उन्हें भजनी मंडली कहते हैं। जो महाराज के पीछे खड़े होते हैं इन्हें टाळकरी भी कहा जाता है। कीर्तन करने वाला किसी एक सुप्रसिद्ध संत का अभंग लेकर उसपर श्रोताओं को धर्मउपदेश देता है। कम से कम दो घंटे तक कीर्तन का समय होता है। कीर्तन ज़्यादातर मंदिर तथा चौराहे पर ही होते हैं।

'कीर्तन' की इस लोककला से लोग धार्मिकता के साथ–साथ नैतिक मूल्य, संस्कृति जतन, संस्कार सीखते हैं। इससे आगे चलकर लोग अपने जीवन में इन मूल्यों को आत्मसात करते हैं। आज वर्तमान समय में कीर्तनकार (महाराज) 'कीर्तन' को एक व्यवसाय की नजरों से देखने लगे हैं। इसमें धार्मिकता कम और व्यवहार ज़्यादा हो रहे हैं।

निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि इन धार्मिक लोक कलाओं से सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एकता को प्रतिपादित किया जाता है। वारकरी संप्रदाय का मुख्य उद्देश्य समता बंधुता एवं मानवता की प्रतिष्ठा करना रहा है। ''जात पाँत पूछे नहीं कोई हरि को भजे सो हरि का होई'' इस उक्ति के अनुसार जो कोई ईश्वर को भजेगा वह ईश्वर का हो जाएगा। यही इस धार्मिक लोक कला की सीख है। महाराष्ट्र के सभी संतों ने अपने वारकरी संप्रदाय के अंतर्गत सभी धर्म के लिए, सभी जाति के लिए ईश्वर के द्वार खुले किए हैं। यहां न कोई ऊंच है ना कोई नीच, ना कोई बड़ा ना कोई छोटा, गरीब–अमीर सभी को एक ही कतार में यह संप्रदाय देखता है। इसलिए महाराष्ट्र में इस संप्रदाय का अन्य साधारण महत्व रहा है।

संदर्भ संकेत :

1. डॉ. प्रभाकर मांडे, 'लोक रंगभूमि' (परंपरा, स्वरूप, आणि भवितव्य), गोदावरी प्रकाशन, औरंगाबाद
2. वही
3. रुस्तुम अचलखांब, "तमाशा लोक रंगभूमि" सुगावा प्रकाशन, पुणे
4. वही
5. डॉ. रामचंद्र देखणे, "महाराष्ट्राची सांस्कृतिक लोककला" पद्मगंधा प्रकाशन, पुणे
6. रुस्तुम अचलखांब, "तमाशा लोक रंगभूमि" सुगावा प्रकाशन, पुणे ◆

पता : डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद, (महाराष्ट्र)–431004
मो. : 7776034092, 8329835774

नादान परिन्दे घर आ जा...

❑ डा. रंजना जायसवाल

''ट्रिन–ट्रिन...ट्रिन–ट्रिन!''

''आती हूँ भाई जरा साँस तो लो, पता नहीं इस भरी दोपहर में कौन इतनी बेदर्दी से घंटी बजा रहा है।'' मम्मी बड़बड़ाते हुए दरवाज़ा खोलने के लिए आगे बढ़ीं। घंटी की आवाज़ सुनकर नीलम भी अपने कमरे से बाहर निकल आई।

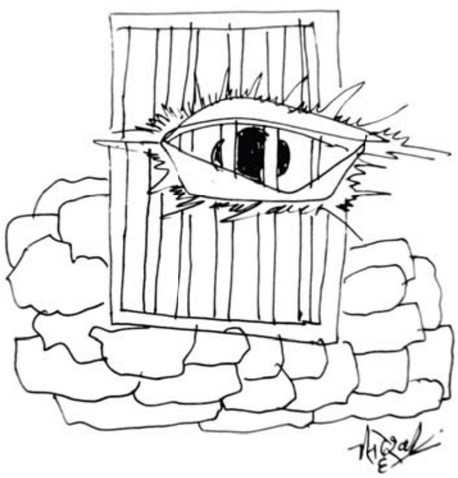

''अरे! सुषमा भाभी इतनी चिलचिलाती धूप में कहाँ घूम रही हैं।'' सुषमा आंटी हमारी पड़ोसन सीधी, सरल और मृद भाषी महिला थीं। इतनी दोपहर में हमारे घर वो भी मिठाई का डिब्बा लिए खुशी उनके चेहरे से टपक रही थी। ज़रूर कोई बड़ी बात थी, नहीं तो वो वक्त–बेवक्त अपने पड़ोसियों को तंग करने वालों में से नहीं थी। सुषमा आंटी को पसीने से लथपथ देखकर मैं पंखा चलाने के लिए आगे बढ़ी।

''आइए बैठिए न'' ''अरे बैठना–वैठना छोड़ो, नीलू की मम्मी ये लो मिठाई खाओ।'' मम्मी जब तक कुछ समझ पाती तब तक सुषमा आंटी ने मोतीचूर का एक लड्डू मम्मी के मुँह में भर दिया। ''आंटी क्या बात है, आप बहुत खुश नज़र आ रही है। कोई खुशखबरी है क्या?'' ''अरे नीलू! खुशखबरी ही तो है, तुम्हारे भाई की नौकरी लग गई है।''

भाई ! नौकरी! जब तक मैं कुछ समझती तब तक एक लड्डू महाशय आंटी जी के हाथों मेरे मुँह में लैण्ड कर चुके थे। मम्मी इस अप्रत्याशित हमले से तब तक सम्भल चुकी थीं। ''सुषमा भाभी! पहले आप आराम से बैठिए फिर बताइये किसकी नौकरी कहाँ लग गई।''

''अरे अपने वाशु की और किसकी।'' वाशु मतलब विशाल सुषमा आंटी का इकलौता बेटा....मुझसे तीन साल छोटा था। हम सब बचपन में एक साथ खेलते थे। वाशु बचपन से ही बड़ा होशियार था। मुझे आज भी याद है कि आंटी ने न जाने ये बातें हमारे सामने कितनी बार दोहराई होंगी। शादी के सात साल बाद भी सुषमा आंटी को संतान का सुख प्राप्त नहीं हो पाया, तब शायद ही कोई दरगाह, मन्दिर बचा जहाँ उन्होंने मत्था न टेका हो, भोले नाथ

के व्रत से लेकर शनिवार को तेल दान तक उन्होंने सारे उपक्रम कर डाले, तब न जाने किस भगवान के आशीर्वाद से विशाल का जन्म हुआ। आंटी–अंकल उसके हर नखरें उठाने के लिए हमेशा तत्पर रहते थे। अंकल की एक छोटी से नौकरी थी, जिसमें उन तीनों प्राणी का अच्छे से गुजारा हो जाता था। बारहवीं के बाद वाशु का पहली ही बार में ही आई.आई.टी. कानपुर में चयन हो गया था। हम सब बहुत खुश थे। कभी–कभी साथ–साथ रहते पड़ोसी भी इतने निकट हो जाते हैं कि उनके खुशी और गम भी अपने खुशी और गम लगने लगते है।

''भाभी! वाशु का अभी थोड़ी देर पहले फोन आया था। आज उसके कॉलेज में कैम्पस सेलेक्शन था। बड़ी–बड़ी मल्टी नेशनल कम्पनियाँ आई थीं। वाशु का भी इन्टरव्यू हुआ। एक बड़ी मल्टी नेशनल कम्पनी ने उसे जॉब के लिए ऑफर किया है। वाशु बता रहा था कि जॉब की शुरूआत दस लाख पर एनम से होगी। खुशी के मारे मेरा दिमाग ही काम नहीं कर रहा था, पहले सोचा वाशु के पापा का इंतजार कर लूँ, शाम को इकट्ठे मन्दिर चलेंगे पर मुझसे इतना सब्र नहीं हो पाया। इसलिए अकेले ही मन्दिर चली गई। मन्दिर से सीधे आपके पास ही आ रही हूँ।''

आंटी एक सांस में बोलती चली गईं, आंटी के बात सुनकर हमारा ध्यान आंटी के माथे पर लगे टीके पर चला गया। जो गर्मी और पसीने से आंटी के पूरे माथे पर फैल गया था। आंटी की खुशी चेहरे से छलक रही थी, ऐसा लग रहा था मानो उनके पैर ज़मीन पर नहीं पड़ रहे थे। आज वो खुशी के मारे सातवें आसमान में उड़ रही थी। थोड़े दिनों बाद शिमला में उसकी ट्रेनिंग शुरू हो जायेगी। वाशु बता रहा था कि पूना और बंगलौर दोनों जगह उनके ऑफिस हैं। मैंने उससे कहा है कि पूना में ज्वाइन कर लेना। नीलू! मगर वो कह रहा था कि बंगलौर में हेड ऑफिस है। हेड ऑफिस में ज्वाइन करने का मजा ही कुछ और है। आज कल के बच्चे हैं भाभी क्या सही है या क्या गलत अच्छी तरह जानते है। हम लोग का ज़माना तो है नहीं सीधी–सादी नौकरी सीधी–सादी ज़िंदगी।''

''हो–हो–हो....''

आंटी अपनी बात कहकर इतनी ज़ोर से हँसी जैसे कोई मज़ेदार चुटकुला सुन लिया हो। ''वाशु कह रहा था कि पासपोर्ट के लिए फार्म भर दिया, हो सकता है, पासपोर्ट वाले इंक्वायरी करने आये...सम्भाल लेना। भाभी हमारी तो सात पुश्तों में से कोई भी हवाई जहाज से नहीं चढ़ा पर ईश्वर की कृपा रही तो मेरा विशाल जरूर चढ़ लेगा।''

''ऐसा क्यों कह रही है आंटी, विशाल ही क्या अब तो आप भी हवाई जहाज से सफर करेंगी।'' जीवन की ये छोटी–छोटी बातें इंसान को कितनी खुशियाँ दे जाती हैं। आंटी न जाने किस सोच में डूब गयी, ''आंटी–आंटी! क्या हो गया, कहाँ खो गई आप'' आंटी अचकचा सी गई। ''लगता है आप अभी से हवाई जहाज में सफर करने लगी, हमें भूल तो नहीं जायेंगी।'' मैंने हँसते हुए उन्हें छेड़ा, आंटी छोटे बच्चे की तरह खिलखिला कर हंस दी, उस समय उनके चेहरे पर एक बच्चे सी मासूमियत देखकर मन को बहुत अच्छा लगा। ऐसा लग रहा था मानों एक माँ की साध आज पूरी गई।

''नहीं री! कैसी बात कर रही हो, कोई अपनों को भूल सकता है।'' मेरे चेहरे पर एक हल्की सी मुस्कान आ गई। मैं मम्मी और आंटी को वाशु पुराण के साथ छोड़कर अपने कमरे में चली गई। दोनों सहेलियों का अस्पष्ट वार्तालाप काफी देर तक मेरे कानों में पड़ता रहा। न जाने मेरी आँख कब लग गयी। कंधे पर किसी के हाथों के दबाव के अहसास से मेरी नींद टूट गई।

''आंटी गई?'' ''यहाँ! तू चाय पिएगी।'' मम्मी ने पूछा ''पापा को आ जाने दो साथ पिएंगे।''

''तेरे पापा को ऑफिस में थोड़ी देर हो जायेगी।'' मम्मी कह कर किचेन में चली गईं और चाय बनाने लगीं। ''दोनों सहेलियों का वाशु पुराण बड़ी जल्दी खत्म हो गया।'' मैंने चुटकी ली, ''तुम बच्चे अपने माँ–बाप का दिल कभी नहीं समझोगे। जब खुद के बच्चे होंगे, तब समझ में आयेगा कि औलाद का दर्द क्या होता है। बेचारी के पास रिश्तेदार के नाम पर बूढ़े माँ–बाप है जिनसे अपना दुःख–दर्द क्या कहें, क्या बाँटे। भाई शादी के बाद अपनी दुनिया में ऐसे मग्न हो गया कि एक छोटी बहन और उसका भी एक परिवार है मानो भूल ही गया। ससुराल में कहने को दो–दो जेठ–जेठानी हैं पर कभी कोई पट्टीदार अपने भाइयों की तरक्की से खुश हुआ है जो होगा। बेचारी अपना सुख–दुःख बाँटने यहाँ चली आती है, उसमें भी तुमको और तुम्हारे पापा को परेशानी है।''

मम्मी के लिए सुषमा आंटी हमेशा बेचारी ही बनी रही। क्या हमारे घर की परिस्थितियाँ सुषमा आंटी से अलग थी। ताऊ जी–ताई जी ने बाबा–दादी को अपने मोह–पाश में ऐसा बाँधा कि वो उससे कभी उबर ही न पायें, पापा बाबा की सबसे छोटी सन्तान थे। छोटी संतान होने के कारण वे कभी भी अपनी दिल की बात उनसे कह न पायें और सही मायनों में वो समझ भी न पाए। ताई जी ने अपनी बुद्धि ऐसी चलाई कि बाबा–दादी ने ज़मीन–जायदाद की तीन हिस्सा उनके नाम कर दिया और उनके साथ उनके घर रहने चले गये। पापा आज तक अपने एक हिस्से और माँ–बाप के साथ न रह पाने के मलाल के दंश को झेल रहे थे। मम्मी–पापा में अक्सर इस बात को लेकर लड़ाई हो जाती कि वो मम्मी की वजह से अपने माँ–बाप को अपने पास नहीं रख पा रहे पर पापा ये भूल जाते हैं कि जब बाबा–दादी ने खुद अपने हाथों से सब कुछ ताऊ जी–ताई जी को दे दिया और उनके साथ रहने का निर्णय ले लिया तब इस बात के लिए मम्मी कहाँ से ज़िम्मेदार हो जाती है। पापा इस बात को क्यों नही समझते कि जब ताऊ जी के बच्चे ब्राडेन्ड कपड़े और शूज पहन कर लग्जरी कार में घूमते हैं तो हम पर क्या बीतती है।

नानी के घर का हाल भी इसमें कुछ अलग नहीं था। नाना–नानी तो आज भी वैसा ही प्यार करते है पर मामा–मामी बँटवारे के बाद ऐसे बदले कि सोचते हुए भी आश्चर्य होता है। गर्मी की छुट्टियों में हम जब भी नानी के घर जाते तो नाना–नानी हमारे चेहरे देखकर ही निहाल हो जाते पर मामा–मामी की आँखें न जाने क्या खोजती रहती। उन्हें हमेशा यह डर लगा रहता कि नाना–नानी कहीं चुपके से हमें कुछ दे न दे। उनके बच्चे एक पल के लिए भी हमें नहीं छोड़ते, मम्मी रात होने का इंतजार करती कि जब सब सो जाएंगे तो वह अपना दुःख–दर्द नाना–नानी से बाँटेगी पर मामी कोई मौका नहीं छोड़ती,

''दीदी! अनु बहुत ज़िद्द कर रहा था कि वह बुआ के पास ही सोएगा। अगर आपको कोई तकलीफ न हो तो आप इसे अपने पास सुला लीजिए।''

मम्मी मन मसोस कर रह जातीं। इस तरह न जाने कितनी रातें बीत जातीं और न मम्मी और न ही नाना–नानी अपनी दिल की बातें कह पाते और न ही एक–दूसरे के दर्द को बाँट पाते। भारतीय औरतों की यही व्यथा है मायके के लिए हमेशा ही वह पराया धन रहती है और ससुराल उसे कभी अपना नहीं समझ पाता। शायद इसीलिए मम्मी को सुषमा आंटी का दुःख अपना दुःख लगता था। आख़िर दोनों एक ही नाव के दो सवार थे।

समय अबाध गति से भागा जा रहा था। वाशु ने इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी कर ली और बंगलौर में नौकरी ज्वाइन कर ली। वाशु समय–समय पर कुछ न कुछ गुप्ता अंकल और सुषमा आंटी के लिए उपहार भेजता रहता। जब वाशु ने पहली बार सुषमा आंटी के जन्मदिन पर एक महंगा मोबाइल भेजा तो वह सबसे पहले हमारे ही घर आई थीं। ''भाभी देखिए न वाशु ने क्या भेजा है, अभी–अभी कोरियर वाला आया था। मैं भी कितनी बेवकूफ हूँ भाभी कोरियर वाले ने कहा कि आपके लिए पार्सल आया है, तो मैं सोचने लगी कि भला मुझे कोई क्यों पार्सल भेजेगा ? मैंने तो उसे जाने के लिये कह दिया कि भइया कोई और घर देखो। ये पार्सल मेरे लिए नहीं है। तब वह कोरियर वाला कहने लगा, सुषमा गुप्ता आप ही हैं न... भाभी लेने को तो मैंने पार्सल ले लिया पर उसे खोलने में मेरा जी बहुत डर रहा था। ये कहो इत्तेफाक से वाशु के पापा उसी वक्त ऑफिस से आ गये। वो मेरी बेवकूफी पर इतना हँसे कि पूछो मत। उन्होंने ही बताया कि वाशु का फोन आया था कि मम्मी के लिए सरप्राइज गिफ्ट भेजा है। देखा न भाभी मैं न कहती थी कि वाशु बच्चा का बच्चा ही रह गया। अब ये क्या हमारी उम्र है जन्मदिन मनाने की और गिफ्ट लेने की।''

अंकल की छोटी सी नौकरी में दो वक्त की रोटी भी मयस्सर हो जाती, वही बहुत था। अंकल ने शायद ही कभी उन्हें उनके जन्मदिन पर कोई उपहार दिया होगा पर आज उनके जन्मदिन पर बेटे के द्वारा भेजे गए उपहार को देखकर को वो कितना खुश थी, खुशी उनके चेहरे से टपक रही थी। ''जानती हैं भाभी, उस दिन मिसिज शुक्ला कह रही थी। सुषमा अब तो तुम भूल ही जाओं अपने बेटे को अब वो तुम्हारे हाथ से गया। भाभी जलती है वो मेरे वाशु और मुझसे सोचती है जैसे उनके बेटे ने उनका साथ और हाथ छोड़ दिया, वैसा मेरा वाशु भी करेगा। ये तो अपने–अपने संस्कारों की बात है। मैं कल ही शुक्ला भाभी को वाशु का भेजा गिफ्ट दिखाऊँगी। देखती हूँ अब उनके पास क्या जवाब होगा।''

वाशु के भेजे गिफ्ट ने सुषमा आंटी को आत्मविश्वास

से भर दिया। उनके चेहरे की चमक और आत्मविश्वास को देखकर लग रहा था मानो वाशु ने आज उनके दूध का कर्ज़ उतार दिया हो। समय तेजी से बीतता जा रहा था और उतनी ही तेजी से वाशु के द्वारा भेजे उपहार भी आंटी के घर में भरते जा रहे थे। लड़की वालों ने आंटी–अंकल की नाक में दम कर रखा था, आंटी रोज किसी न किसी लड़की की तस्वीर लेकर आ जाती और मम्मी के साथ बैठकर घंटों उसके रंग–रूप में चर्चा करती या यूँ कहिए कि उनका पोस्टमार्टम करती रहती मैं भी कभी–कभी इस मंत्रणा का हिस्सा बन जाती लड़कियों की फोटो और उनके बायोडाटा देखकर मैं आश्चर्य में पड़ जाती, इंजीनियरिंग और डॉक्टरी की पढ़ाई किए हुए लड़की के माता–पिता पच्चीस से पच्चास लाख की मोटी रकम दहेज में देने को तैयार थे। एक लड़की जो देखने में भी ठीक–ठाक थी, उसने एम टेक और एमबीए भी कर रखा था, माता–पिता दहेज में पच्चास लाख रूपये और गृहस्थी का पूरा सामान देने को तैयार थे पर आँटी का मन लड़की के रंग–रूप को देख थोड़ा पीछे हट रहा था। आंटी ज़ोर–शोर से इस रिश्ते का बख़ान कर ही थीं।

''नीलू जानती हो, इस लड़की के पिता सूरत के बहुत बड़े व्यवसायी है, चार दिन पहले अपनी लड़की का रिश्ता लेकर आये थे, मुई न जाने कौन सी कार थी, मुझे तो नाम भी याद नहीं रहता पर वाशु के पापा कह रहे थे कि तीस लाख की तो गाड़ी ही थी। पहली बार आये थे पर ऐसा लग रहा था मानों वर्षों से जानते हो। फलों की टोकरी, मेवे का डिब्बा और काजू–पिस्तों की मिठाई लेकर आये थे। मेवे और मिठाइयों के दाम तो आसमान छू रहे है। वाशु जब छुट्टियों में आयेगा तो उसी को दे दूँगी। अब क्या ये हमारी उम्र है ये सब खाने की। वाशु कितनी मेहनत करता है और कैंटीन का खाना तो कैंटीन का ही होता है। मेरा वाशु तो वैसे भी मेरे हाथ के अलावा किसी के हाथ का खाना पसन्द ही नहीं करता। अरे! वहाँ कौन बैठा है जो उससे मान–मुनव्वल करेगा।''

आंटी के चेहरे पर एक अजीब सा दर्द उभर आया। न जाने क्या सोच कर उनकी आँखें भर आईं।

''आंटी! क्या हुआ?'' मैंने डरते–डरते पूछा, ''कुछ नहीं नीलू ये मुई आँखें जब देखो तब बिना बात बरस जाती हैं। हाँ तो मैं क्या कह रही थी, नीलू इस लड़की के पिता शायद इस बात को समझ गये थे कि उनकी लड़की हमें कुछ कम जँच रही है, जाते–जाते वाशु के पापा से कह गये कि भाई साहब मेरी बेटी की माँ की इच्छा है कि उसकी बेटी ऐसी ही लग्जरी कार में विदा हो। मॉडल और रंग जो आपको पसन्द हो।'' नीलू तिलमिला सी गई। एम.ए. और बी. एड. करने के बाद भी वह दो साल से बैठी थी, समय बिताने के लिए एक स्कूल में नौकरी भी कर रही थी। शादी की उम्र निकली जा रही थी पर उसका रिश्ता तय नहीं हो पा रहा था। नीलू को अपने लिए वर तलाशते पिता का हताश चेहरा, आँखों के सामने आ गया। जब योग्य लड़के आलू–प्याज की तरह बिकने लगेंगे और खरीददार भी इस तरह बोली लगायेंगे। तब उसकी जैसी लड़कियों का माझी आखिर कौन होगा। आखिर उसका किनारा कब और किसके हाथों लगेगा। शायद मम्मी मेरे द्वंद्व को समझ गई, उन्होंने आँखों से मुझे चुप रहने का इशारा किया। मैंने किसी तरह गुस्से को काबू में किया और चुपचाप अपने कमरे में आ गई। आज बार–बार पापा का हताश चेहरा मेरी आँखों के सामने घूम रहा था। पापा ने इन दो सालों में न जाने कितने घरों की खाक छानी होगी, पर हर बार असफलता ही मिली। कभी मेरा रंग–रूप तो कभी दहेज की मोटी रकम न दे पाने में समर्थ मेरे पिता को इंकार का दंश झेलना पड़ा। आंटी वाशु के विवाह के सपने के उत्साह मेरे हृदय में पलते दर्द के अहसास को देख नहीं पा रही थी।

मम्मी और आंटी का लगभग रोज का यही काम था, वाशु दीपावली की छुट्टी में आने वाला था। आंटी ने पहले से ही सारी प्लानिंग कर रखी थी। उन्होंने लड़की वालों से पहले ही बता दिया था, उनका बेटा छुट्टियों में आने वाला है। वो एक भी दिन बर्बाद नहीं होने देना चाहती थीं। अंकल और आंटी ने हर तरह से अच्छे कुछ रिश्ते छाँट लिये थे। बस! वाशु के आने की देरी थी, वाशु जिस रिश्ते के लिए रज़ामंदी की मुहर लगा देगा, एक छोटा सा कार्यक्रम करके लड़की को अंगूठी पहना कर रिश्ता पक्का कर दिया जायेगा।

आँटी ने मम्मी के साथ जाकर एक हीरे की अंगूठी और बनारसी साड़ी भी खरीद ली थी। मुझे आज भी याद है जिस दिन मम्मी और आंटी, अंगूठी खरीद कर लाये थे, आंटी ने बड़े चाव से वह अंगूठी मुझे दिखाते हुए कहा था ''नीलू

हमारी ज़िन्दगी चार जोड़ी कपड़ों में ही बीत गई। तुम्हारे अंकल की तनख्वाह भी इतनी ज्यादा नहीं थी कि मैं गहने गढ़वाती उस पर वाशु की इंजीनियरिंग की पड़ाई। कभी अपने बारे में सोचने का मौका ही नहीं मिला, पर मेरे मन में हमेशा से ये साध थी कि वाशु की शादी में कोई कमी नहीं होने दूंगी। अब तो वाशु भी कमाने लगा है वो भी हर महीने कुछ पैसे भेज देता है। कहता है माँ 'अब पैसे की चिन्ता न करो, पापा से कहना अब परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है। बढ़िया खाओ और बढ़िया पहना करो। मैं हर महीने पैसे भेज ही रहा हूँ, कम पड़े तो बताना। बिल्कुल पागल है, जब देखो तो मम्मी–पापा की ही चिन्ता लगी रहती है। उसी के भेजे पैसों से बचाकर ये हीरे की अंगूठी लाई हूँ।''

अचानक आंटी के दाहिने हाथ में पड़ सोने के छल्ले पर मेरी नज़र चली गई। जो उनके बेबसी और बदहाली के दिनों की दास्ता बयाँ कर रहे थे। बेटे की बहू के लिए खरीदी गई अंगूठी मानों उन्हें मुँह चिढ़ा रही थी। इस घटना के कई दिन बीत गये। मम्मी किचन में नाश्ता बनाने में व्यस्त थी, मुझे कॉलेज जाने की जल्दी थी। आज कल कॉलेज में सेमिनार चल रहे थे।

''माँ जल्दी करो....मुझे देर हो रही है।'' ''ये लड़की भी जब देखो तो आफत मचाये रखती है, दिन–भर किताबों में सिर दिए बैठी रहेगी। चलो नाश्ता बन गया है, आकर खा लो।'' माँ ने भुनभुनाते हुए कहा...ये रोज की बात थी। हम दोनों माँ–बेटी हमेशा एक–दूसरे से ऐसे ही भिड़ते रहते थे पर फिर कुछ समय बाद बिल्कुल शांत जैसे कुछ हुआ ही न हो।

''नीलू तू कॉलेज जाते वक्त जरा सुषमा आँटी के यहाँ चली जाना, पता नहीं क्या बात है परसों से वो दिखाई नहीं दी और न ही घर आई। कहीं बीमार तो नहीं पड़ गई।'' ''ठीक है, ठीक है तुम ज्यादा चिन्ता न करो, मैं चली जाऊँगी।'' नीलू ने कहा।

'' ट्रिन... ट्रिन...''

''इतनी सुबह–सुबह कौन आया।'' नीलू ने पराठे का अंतिम टुकड़ा मुँह में डालते हुए कहा। ''माँ रूको मैं देखती हूँ।'' नीलू ने कहा। ''नमस्ते दीदी!'' ''वॉट ए प्लेजेन्ट सरप्राइस! वाशु तुम कब आये, तुम तो दीपावली पर आने–वाले थे। अचानक छुट्टी कैसे मिल गई, तभी सुषमा आँटी आजकल दिखाई नहीं दे रही थीं। मम्मी तो नाहक ही परेशान हो रही थी।''

''अरे उसे बैठने भी दो कि सारे सवाल–जवाब दरवाज़े पर ही कर लोगी'' माँ ने टोका, ''ओह! आई एम सॉरी!'' नीलू ने झेंपते हुए कहा। ''नमस्ते आंटी, कैसी है आप ?'' ''खुश रहो, खुश रहो... माँ–बाप को नाम खूब रौशन करो।'' माँ की आँखों से आँसू छलक गये। शायद ये आँसू वाशु के लिए नहीं, सुषमा आंटी के इंतजार के लिए थे। हम सब वाशु को ऐसे घेरकर बैठ गये, मानों वह मंगल ग्रह की यात्रा करके आया हो। वाशु पहले से भी ज्यादा खूबसूरत और आत्मविश्वासी लग रहा था। पता नहीं ये बैंगलोर के पानी का असर था या फिर मल्टी नेशनल कम्पनी में काम करने का प्रभाव। ब्रांडेड कपड़े और शूज में देखकर उसे सूरत वाले व्यवसायी पिता की याद आ गई। आज उसे भली–भाँति समझ में आ रहा था कि बड़े–बड़े टेण्डरों को किसी भी कीमत पर हासिल करने वाले इस कपड़े व्यवसायी ने चलते–चलते लग्जरी कार का दाँव क्यों खेला था।

''नीलू अरे तुझे कॉलेज नहीं जाना है क्या...?'' माँ ने कहा। ''ओह! मैं तो भूल ही गई थी। वाशु माफ करना आज कॉलेज में एक जरूरी सेमिनार है। अभी तो तुम हो। फिर मिलते हैं।'' ''मैं भी चलता हूँ आँटी, अब आया हूँ तो दोस्तों से भी मिल लूँ।'' वाशु ने उठने का उपक्रम किया। ''मम्मी से कहना, बेटा आ गया तो हमें भूल गई।'' मम्मी ने कहा, वाशु मुस्कुरा दिया। ''ठीक है, नमस्ते आंटी।'' ''खुश रहो बेटा।'' वाशु को आये तीन दिन बीत गये थे, ''नीलू! मैं सोच रही थीं कि एक दिन वाशु को घर खाने पर बुला लें। तुम्हारा क्या विचार है। मैंने तुम्हारे पापा से भी कल रात पूछा था तो कहने लगे, तुम्हारा डिपार्टमेन्ट है जैसा तुम उचित समझो।''

''इसमें इतना सोचना क्या है, आज ही बुला लो।'' नीलू ने कहा तभी दरवाज़े पर डोर बेल बजी। ''कौन है!'' उधर से कोई आवाज़ नहीं आई! मैंने झटके से दरवाज़ा खोला। ''ओह! आप है आँटी आइये–आइये।'' ''माँ, सुषमा आंटी आई हैं।'' ''आईए–आइए भाभी वाशु क्या आया, आप तो हमें बिल्कुल भूल ही गई। हम अभी वाशु की ही बात कर रहे थे, कैसा है वाशु...?'' ''वो कल शाम की फ्लाइट से बंगलौर चला गया।'' ''क्या ?'' मम्मी और मेरे मुँह से लगभग एक साथ ये शब्द निकला। ''वहाँ सब ठीक है न!'' ''हाँ–हाँ सब ठीक है।'' आंटी ने आश्वस्त करते हुए कहा।

''वाशु बता रहा था कि उसके काम से खुश होकर कम्पनी उसे अगले महीने प्रोजेक्ट के लिए अमेरिका भेज रही हैं। इसलिए दीपावली की छुट्टियों में वह नहीं आ पायेगा। जानती है भाभी, अगले महीने से उसकी तनख्वाह डेढ़ गुना बढ़ जायेगी। यही नहीं अमेरिका में काम करने के लिए उसे अलग से भी पैसे ....अरे वो क्या कहते है डॉलर मिलेगे।''

मुझे आंटी की बात सुनकर हँसी आ गई, आंटी तो ऐसे खुश हो रही थी, जैसे डॉलर का चेक उन्हीं के एकाउण्ट में आ जायेगा। ''भाभी लड़की वालों को अब क्या जवाब देंगी, अब वाशु दीपावली पर तो आयेगा नहीं।'' पता नहीं आँटी को क्या हुआ उनका चेहरा एकदम से सफेद पड़ गया, ''नीलू जरा एक गिलास पानी तो पिला।'' आँटी ने कहा। ''जी आँटी!''

मैं उठने को हुई, तभी मम्मी ने फरमान सुनाया ''दूध गैस पर चढ़ा रखा है, देख लेना।'' ''अच्छा...'' मुझे लगा आंटी को बड़े मौके से प्यास लगी। नहीं तो मुझे आज फिर ''वाशु पुराण'' झेलना पड़ता। पता नहीं क्या हुआ आंटी का स्वर एकदम धीमा हो गया, जैसे वो यह नहीं चाहती थी, उनका वार्तालाप मेरे कानों में पड़ा। इंसान का यह स्वभाव होता है कि जब उससे कोई भी बात छुपाई जा रही हो तब उस इंसान के मन में उस बात को सुनने की इच्छा और भी तीव्र हो जाती है। पता नहीं आज मेरी परिपक्वता और संस्कारों को क्या हो गया था, मैं सबको ताक पर रख दीवार से सट कर आंटी की बात सुनने का प्रयास करने लगी। आंटी का स्वर काँप रहा था, उनका गला रूंध–सा गया था, लगा मानों आंटी अभी रो देंगी।

''भाभी, वाशु इस बार हमसे मिलने नहीं बल्कि सूचना देने आया था।'' ''किस बात की सूचना...!'' मम्मी ने आश्चर्य से पूछा। ''वाशु जब कानपुर से इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा था, महिमा भी उसी की क्लास में थी। दोनों बहुत अच्छे दोस्त हैं। महिमा भी पढ़ने में बहुत अच्छी थी। उसकी भी वाशु की कम्पनी में नौकरी लग गई थी। लेकिन वाशु की पोस्टिंग बंगलौर में और महिमा की पूना में हुई। महिमा के पिता सरकारी स्कूल में अध्यापक के पद पर हैं, महिमा उनकी सबसे छोटी संतान है। महिमा के पिता की इच्छा है अगले साल उनका रिटायरमेण्ट है। उनके रिटायरमेण्ट से पहले और वाशु के अमेरिका जाने से पहले उनकी शादी हो जाये। शादी के बाद कम्पनी की पॉलिसी के हिसाब से दोनों की पोस्टिंग एक ही जगह हो जायेगी।''

''भाभी लड़की किस जाति की है?'' मम्मी ने दबे स्वर में पूछा ''कायस्थ!'' आंटी ने बुझे स्वर में कहा। मुझे मम्मी की बात सुन कर बड़ा गुस्सा आया। जब वाशु सब कुछ तय कर ही आया था, तब लड़की के जाति पूछने का क्या मतलब था। सुषमा आंटी का सोने का तोता अपनी भावी ससुर की लग्जरी कार को छोड़कर कब का फुर्र हो गया था।

पता नहीं आज मुझे क्यों एक अजीब–सा संतोष मिल रहा था। मुझे आज बार–बार हँसी आ रही थी, शायद ये हँसी उस धन कुबेर के लिए थी जिसका लग्जरी कार के रूप फेका गया दाँव भी किसी काम नहीं आया था या शायद ये हँसी सुषमा आंटी के लिए थी जिनके लग्जरी कार में बैठने का सपना चकानाचूर हो चुका था। शायद ये सोच इन दो सालों में नीलू के रिश्ते को अस्वीकार करने वाले लड़कों के कारण ही उपजी थी। नीलू को हमेशा यही लगता था कि पिता की आर्थिक स्थिति के कारण ही उसका रिश्ता अस्वीकार हो जाता है पर आज एम.टेक और एम.बी.ए. पास धन कुबेर की लड़कियों का रिश्ता भी अस्वीकार हो जाने पर उसे गहरी तसल्ली हुई। उसे लगा उसके टूटे दिल और खुले धावों पर किसी ने मरहम लगा दिया हो।

वाशु के जाने के चार–पाँच दिन बाद महिमा के पिता आये। तीन बच्चों की शादी वह पहले ही कर चुके थे, महिमा उनकी चौथी संतान थी। आंटी ने मम्मी को उनके आने की पहले ही सूचना दे दी थी। मम्मी ने आंटी का हाथ बँटाने के लिए मुझे पहले ही भेज दिया था। सक्सेना जी बड़े विचित्र आदमी थे। बोलना शुरू करने थे तो चुप होने का नाम ही लेते थे। मैं चाय लेकर बैठक में पहुँची तो राजनीति पर ऐसे बातें कर रहे थे। मानों चार नेता रोज उनका आशीर्वाद लेकर जाते हो। मुझे याद आया वे राजनीतिक शास्त्र के अध्यापक थे। शायद विषय का असर उन पर इस तरह हावी था कि वे काल और परिस्थितियाँ भी भूल गये थे। वे शायद ये भूल गये थे कि वे लड़की के पिता की हैसियत से उनके घर आये थे। ये मेरा पहला तर्जुबा था, जब मैंने किसी लड़की के पिता को लड़के वाले के घर इतना विश्वास के लवरेज़ देखा था।

''भाई साहब, मेरी दो बेटियाँ और दो बेटे हैं। बड़ी बेटी एम.ए., एम.एड. है, उसकी शादी बिजनौर में हुई है।

दामाद जी, बिटिया के एम.एड. में सहपाठी थे। दोनों परिवार शादी के लिए राजी थे, वैसे भी आज के ज़माने में जाति के पचड़े में कौन पड़ता है। दामाद जी ठेठ कान्यकुब्जी ब्राह्मण हैं, उनकी माता जी ने शादी पर बहुत हंगामा मचाया पर कहते हैं न मियाँ–बीबी राजी तो क्या करेगा काजी।'

''हे–हे–हे–हे!''

सक्सेना जी बेशर्मी से हँस पड़े। उनकी बातें सुनकर ऐसा लगा कि मानों वह गुप्ता अंकल और आँटी पर ही कटाक्ष कर रहे हों। आँटी और अंकल चुपचाप बैठ चाय पीते रहे, जब अपना पेट जाया ही धोखा दे जाये तो फिर दुनिया से कैसी शिकायत। सक्सेना जी बदस्तूर वैसी ही जारी रहे। अचानक उन्हें लगा कि प्रतिपक्ष उनकी बातों को सिर्फ मूर्ति की तरह सुन रहा है, तब उनका वाल्यूम कुछ कम हुआ।

''भाई साहब! मैं तो गाँधी जी का भक्त हूँ न दहेज देने में विश्वास करता हूँ न लेने में। वैसे भी मैंने अपनी लड़की को इतना शिक्षित कर दिया है कि उसका तो सवाल ही नहीं उठता। हमारे लिए तो लड़की ही दहेज है।''

''हे–हे!''

सक्सेना जी ने अपनी आदत के मुताबिक फिर से दाँत निपोर दिए। मेरा मन किया उनसे कह दूँ अंकल आज दुल्हन ही दहेज है सुना था पर बेटी ही दहेज है ये पहली बार सुन रही हूँ पर घर से चलते वक्त माँ के द्वारा दी गई सख्त हिदायत मेरी आँखों के सामने घूम गई। ''नीलू! आंटी का हाथ बँटाने जा रही हो वही करना ज्यादा चपर–चपर मत करना। उनके घर का मामला उन्हें समझना है।''

''माँ! तुम्हें लगता है कि मैं ज्यादा बोलती हूँ तो फिर भेज ही क्यो रहीं हो?'' ''अच्छा मेरी माँ गलती हो गई।'' माँ ने दुलारते हुए कहा था। सक्सेना जी की बातों से एक बात तो तय थी कि वो दान–दहेज तो देने से रहे पर वह आव–भगत भी अच्छे से कर पायेंगे इसके भी आसार दिख नहीं रहे थे। वैसे भी वाशु तो हर बात साफ तौर पर कह ही चुका था, तब किसी प्रकार की उम्मीद करना बेकार ही था। अंत में तय यही हुआ कि जब दोनों पक्ष राज़ी ही हैं, तब मंगनी और तिलक जैसी रस्म अदायगी की जरूरत ही क्या है। सक्सेना जी फिज़ूल खर्च के वैसे भी खिलाफ थे या फिर यूँ कहिए कोई चाहे जितनी चिल–पों मचायें शादी तो होनी ही थी। वो कहावत हैं न हींग लगे न फिटकरी रंग भी चोखा होए।

सक्सेना जी की विदाई के बाद मैं भी घर चली आई। मेरे घंटी बजाने से पहले ही माँ ने दरवाज़ा खोल दिया। मेरे चेहरे पर रहस्मयी मुस्कान छा गई। ''माँ एक गिलास पानी पिलाओ!'' कह कर मैं सोफे पर निढाल हो गई। मैं बहुत थक गई थी पर तन से नहीं, उससे भी कहीं ज्यादा मन से... माँ ने शायद मेरी बात नहीं सुनी। ''नीलू! क्या हुआ सक्सेना ही आये थे? उनके साथ कौन–कौन आया था, क्या कहा उन्होंने...!''

माँ ने इतने सारे सवाल एक साथ पूछ लिये कि मैं झुँझला गई। ''क्या माँ होना क्या था, सब कुछ तो वाशु तय ही कर गया था, सक्सेना जी तो सिर्फ औपचारिकता के लिए आये थे। वो क्या कहते हैं सक्सेना जी की भाषा में...,'' जब मियाँ बीबी राजी तो क्या करेगा काज़ी।''

माँ को एक–एक बात सिल–सिलेवार ढंग से चाहिए थी, जैसे सक्सेना जी आये तो गुप्ता आंटी–और अंकल का रवैया कैसा था, मान–मुनव्वल और लेन–देन की बात किस स्तर पर हुई वगैरह–वगैरह पर मेरे रवैये को देखकर मम्मी चिढ़ सी गई।

''इस लड़की से किताबों और कॉलेज की बातें करवा लो। किसी बात का सीधे ढंग से जवाब नहीं दे सकती।''

मैं मुस्कुराते हुए अपने कमरे में चली गई, मम्मी की बहुत देर तक बड़बड़ाने की आवाज़ आती रही। मानव का स्वभाव भी अजीब होता है, यही मेरी मम्मी जी जो आंटी के घर जाने से पहले मुझे समझा रही थी कि ये उनके घर का मामला है, उन्हें समझने दो। अब वही मुझसे खोद–खोद कर उनके घर का लेखा–जोखा माँग रही थी।

सक्सेना जी के जाने के दो–तीन बाद आंटी और अंकल आये। उन्होंने बताया कि अगले महीने के पहले लग्न मूहुर्त में वाशु और महिमा की शादी तय हो गयी है। अपने इकलौते बेटे के विवाह की सूचना इतनी ठंडे ढंग से दी गई कि हम उन्हें बधाई देने की औपचारिकता भी नहीं कर पायें। पता नहीं मम्मी को क्या सूझा वो झटपट किचन से सूजी का हलवा बना लाई।

''अरे भाई साहब खबर इतनी सूखे–सूखे। लीजिए हलवा खाइए और मुँह मीठा कीजिए।'' मम्मी भी गजब है, जब सारी तरकीबें फेल हो जाती हैं। मम्मी हमेशा माहौल का हल्का करने का रास्ता ढूंढ ही लेती है। शादी बैंगलोर जाकर ही होनी थी, क्योंकि वाशु अभी हो कर गया था और उसे

छुट्टी नहीं मिल सकती थी। जब से मम्मी को पता चला था कि वाशु की शादी बैंगलोर से होगी, तब से मम्मी को बिना बात के अक्सर झल्लाती और बड़बड़ाती रहती।

''भाड़ में जायें ऐसी नौकरी, आग लगे ऐसे पैसों को जब अपनी ही शादी के लिए छुट्टी न मिल पायें तब ऐसी नौकरी करने का क्या फायदा। जितना पैसा नहीं देते, उतना तो खून चूस लेते है ये मुए कम्पनी वाले। इनका तो हाल है कि बीमार पड़ने से पहले भी पूछना पड़ेगा कि भईया छुट्टी मिलेगी बीमार पड़ना है।''

मम्मी की बात सुन कर मैं अक्सर हँस पड़ती। मुझे हँसता हुआ देखकर मम्मी आग—बबूला हो जातीं। ''हँस लो—हँस लो!इन दोनों बाप—बेटी की वजह से मैं सुषमा भाभी के इकलौते बेटे की शादी में नहीं जा पा रही हूँ।''

माँ का गुस्सा होना जायज था, वाशु की शादी के समय पापा के ऑफिस में कम्पनी वाले आडिट करने आने वाले थे। मैंने एम.एड. का फार्म भरा था, जिसकी काउंसलिंग उस तारीख के आस—पास होनी थी। मगर मम्मी के लिए इन सबसे ज्यादा वाशु की शादी थी। मम्मी पता नहीं ये बात क्यों नहीं समझा पा रही थी कि वाशु की शादी तो अचानक तय हुई है पर पापा का ऑडिट और मेरी काउंसलिंग की तारीख तो लगभग तय ही थी। शायद हमेशा से ''बेचारी'' लगने वाली गुप्ता आंटी को मम्मी इस कठिन वक्त में अकेला नहीं छोड़ना चाहती थीं। शायद इसी को अच्छा पड़ोसी कहते हैं। मम्मी हमेशा कहती थीं कि किसी भी मौके पर चाहे वह अच्छा हो या बुरा रिश्तेदार से पहले पड़ोसी पहुँचते हैं। इसलिए पड़ोसियों से हमेशा बना कर रखना चाहिए। सच भी है हमारे घर और गुप्ता आंटी के घर में सिर्फ एक दीवार का ही फासला था, थे तो हम एक ही परिवार।

''नीलू चल जल्दी से तैयार हो जा, सुषमा आंटी के घर चलना है। अरे भाई शादी का घर है सौ काम होंगे। माना सक्सेना जी को फिजूल खर्ची पसंद नहीं पर वाशु तो गुप्ता जी का इकलौता बेटा है उनके भी अरमान होंगे। आंटी अकेले कहाँ तक सम्भालेगी। चलो उनके घर एक बार पूछ तो आयें कि हमारे लायक अगर कोई काम हो तो...?''

''क्या मम्मी तुम भी कोई पूछे या न पूछे दौड़ पड़ती हो!'' नीलू ने झल्ला कर कहा। ''अब बेकार की बातें मत करो चुपचाप तैयार हो और चलो।'' ''आंटी—आंटी! दरवाज़ा तो खुला है? मम्मी आंटी कहाँ है?''

''सुषमा भाभी कहाँ है?'' आंटी को ढूंढते—ढूंढते हम बेडरूम तक पहुँच गये। आंटी अपने बेड पर बैठी थीं, उनके बगल में वही दोनों साड़ियाँ और अंगूठी पड़ी थी जो उन्होंने मम्मी के साथ मिलकर भावी कुलवधू के लिए खरीदी थी पर.. . ''आंटी—आंटी!'' ''हूं!'' आंटी जैसे नींद से जागी।

''अरे भाभी—नीलू आप कब आई?''

आंटी ने उठने का उपक्रम किया। ''तब जब आप अपनी बहू के सपनों में खोई थीं।'' नीलू ने माहौल को हल्का करने का प्रयास किया। इस मुस्कान में अपने इकलौते बेटे की शादी करने जा रही माँ की खुशी न जाने कहाँ खो गई थीं।

''क्या—क्या खरीदा आंटी। अब तो सारी तैयारी खत्म होने वाली होगी।'' ''कैसी बात कर रही हो नीलू, शादी के घर में काम कभी खत्म होता है। अरे बारात दरवाज़े पर लगी होगी तब भी कुछ न कुछ बाकी ही रह जाता है।''

माँ तो ऐसे कह रही थीं जैसे न जाने अब तक कितनी शादी निपटा चुकी हों। हम दोनों को इस तरह उलझते देख आंटी ने माहौल शांत करते हुए कहा ''कैसी तैयारी?'' शायद आंटी मेरी और मम्मी का झूठ—मूठ बहस करते देख स्थिति समझ चुकी थी। ''भाभी वाशु का फोन आया था। कह रहा था मम्मी ज्यादा परेशान होने की जरूरत नहीं है। साड़ी और गहनों के चक्कर में तो बिल्कुल भी मत पड़ना। वैसे भी महिमा जींस टॉप पहनती है, उसकी सारी साड़ी वैसे ही रखी रह जायेंगी। रही बात गहनों की, महिमा वर्किंग वूमन है। इतने भारी गहनों का आखिर वो क्या करेगी। आज के जमाने में वैसे भी भारी गहने पहनता ही कौन है?'' कहते—कहते आंटी की आँखें भरभरा गई। आंटी की बात सुन मम्मी गुस्से से लाल हो गईं। ''हद हो गई, जरूरत ही क्या अरे भाई क्या सही है और क्या गलत है, ये हमें अब इन बच्चों से सीखना होगा। शादी—ब्याह है, कोई गुड्डे—गुड़ियों का खेल नहीं। यही दिन देखने के लिए माँ—बाप अपना पेट काट—काट कर बच्चों को बड़ा करते हैं कि आगे चलकर हमें रस्ता पढ़ाये कि इन सब की ज़रूरत क्या है।''

मैंने मम्मी को हाथ से इशारा कर चुप रहने को कहा, मगर मम्मी तो ऐसे बमक रही थीं, मानों उनके खुद के बेटे ने

उन्हें फरमान सुना दिया हो। इस वाशु के चक्कर में मैं भी पिसी जा रही थी। मम्मी आज कल के–आज कल के बच्चे कह कर कहीं न कहीं मुझे भी आहत कर रही थी। अगर आज मुझे वाशु मिल जाता तो मैं उसे दो चाँटे अवश्य लगाती। उसके चक्कर में कहीं न कहीं मैं भी सानी जा रही थीं।

मैं चुपचाप वहाँ से उठकर आंटी के चौके में चाय बनाने चली गई पर मम्मी उसी तरह बदस्तूर जारी रही। मम्मी की आवाज चौके तक आ रही थी। ''अरे वाशु को घर की मान–मर्यादा का भी ध्यान नहीं है। मान–मर्यादा भी कुछ चीज है। क्या भाई साहब और भाभी जी कंगलों की तरह बहू के दरवाजे पर खड़े हो जायेंगे।''

मम्मी की बात सुन मुझे हंसी आ गई। सक्सेना जी और वाशु ने महिमा के घर पर जाने का मौका ही कब दिया था। शादी तो कोर्ट–मैरिज होनी थी क्योंकि सक्सेना जी फिजूल खर्ची और ऊपरी दिखावा पसंद नहीं था। ''गरमा–गरम चाय हाज़िर है।''

मैंने माहौल को हल्का बनाने का भरसक प्रयत्न किया। ''अरे नीलू, तुम क्यों परेशान हो रही हो? मैं हूँ ना..!'' ''चाय मैंने बना ली तो क्या हुआ आंटी जैसे आप वैसे मैं...!''

मैंने मुस्कुराते हुए कहा। आंटी के चेहरे पर एक हल्की सी मुस्कान आ गई। हम तीनों चाय की चुस्कियों का आनन्द ले रहे थे पर आंटी वहाँ होकर भी वहाँ नहीं थी। अपनी लाई हुई दोनों साड़ियों के ऊपर हाथ फेरते न जाने वो कहाँ खो गई थीं। आंटी को इस तरह साड़ियों को दुलारते देख मम्मी कुछ कहने को हुई, मगर मैंने उनका हाथ दबाकर उन्हें रोक लिया। जिस उत्साह के साथ हम आंटी के घर गये थे, उतनी ही निराशा के साथ वापस लौट आए। मुझे आज वो दिन बार–बार याद आ रहा था, जब वाशु की नौकरी लगी थी। आंटी का उत्साह उनकी उमंग देखने लायक थीं। उसकी तनख्वाह और उसके उज्ज्वल भविष्य के सपने की कल्पना करते–करते आंटी निहाल हुई जा रही थी पर आज...! स्थिति बड़ी अजीब थी। वाशु की शादी के दो दिन पहले आंटी हमारे घर आई, ''भाभी हम शाम की फ्लाइट से बंगलौर जा रहे हैं।''

माहौल में एक अजीब सी नीरवता छा गई। काफी देर तक सन्नाटा छाया रहा। आंटी भी कुछ कह न सकी और मम्मी भी कुछ बोल नहीं पाई। समय का चक्र किसी के लिए जो रूका है मेरे लिए रूक जाता। मेरी भी शादी पास के शहर में हो गई। अजीत मेरे पति एक प्राइवेट कम्पनी में मुलाजिम थे। पिता की बचपन में ही मृत्यु हो चुकी थी। घर में एक छोटी बहन और विधवा माँ के अलावा कोई नहीं था। अपनी शादी से पहले ही उन्होंने छोटी बहन की शादी कर अपनी ज़िम्मेदारी से मुक्ति पा ली थी। घर में मैं और माँ ही रहते थे, इस उमर में उनको अकेले छोड़ कर आना मुझे उचित नहीं लगता था। वैसे तो मायके में मम्मी–पापा भी अकेले थे पर मैं चाह कर भी दो दिन से ज्यादा उनके पास नहीं रह पाती। शाम को जब अजीत ऑफिस से घर आये तब मैं ने उन्हें चाय का प्याला पकड़ाते हुए कहा ''सुनिए, आज पापा का फोन आया था। कल मम्मी का मोतियाबिन्द का ऑपरेशन है। पापा कह रहे थे कि अगर तुम आ जाओ तो थोड़ा....!''

शब्द मेरे गले में फंस कर रह गये। शादी के दो सालों के बाद शायद ये पहला मौका था। जब मैंने इनसे अपने लिए कुछ माँगा होगा। वैसे भी मध्यम वर्गीय परिवारों की बीवियाँ जहाँ उनके पति न जाने कितनी ज़िम्मेदारियों से दबे रहते हैं अपने पतियों से जायज–नाजायज माँगों को कहने के लिए दस बार सोचती हैं। क्योंकि उन्हें अपने प्रश्नों का जवाब बखूबी मालूम होता है। अजीत की तरफ से कोई प्रतिक्रिया न देखकर मैं बेचैन हो गई। मैं यह समझ नहीं पा रही थी कि इस स्थिति में मुझे कैसी प्रतिक्रिया ज़ाहिर करनी चाहिए। लड़कियाँ बिना किसी ना–नुकुर के अपने आप को ससुराल की परिस्थितियों के अनुसार ढाल लेती है। ससुराल का सुख और दुःख उसका अपना सुख और दुःख बन जाता है पर उसके अपनों का सुख और दुःख...!नीलम की रात सिर्फ करवटें बदलते बीत गई पर उसके बगल में सोये अजीत तो उसकी बैचेनी से कोसों दूर थे। मेरी आँखों से अविरल आँसू बहते रहे। मैंने भी उन्हें रोकने का प्रयास नहीं किया।

सुबह लाल–लाल आँखों के साथ वह दिन भर घर के काम निपटाती रही, जब अजीत ने ही उसके बारे में कुछ नहीं सोचा। तब अपनी सास से उम्मीद करने का फायदा। काम करते–करते उसकी पीठ अकड़ सी गई थी, इसलिए वह कुछ क्षण के लिए आँख बंद करके लेट गई। अभी

उसको बिस्तर पर लेटे हुए कुछ समय ही गुजरा होगा, उसने अपने माथे पर किसी के हाथ का दबाव महसूस किया। नीलम अचकचा कर उठ गई,

''अरे लेटी रहो।''

''माँ जी आप!''

नीलम ने उठने का उपक्रम किया, ''क्या बात है कल से देख रही हूँ उखड़ी–उखड़ी दिख रही हो।'' माँ ने नीलम के सर पर हाथ फेरते हुए कहा हम अपने जेहन में हमेशा हर रिश्ते की छवि बना लेते हैं। माँ के इस रूप से मैं पहली बार रूबरू हो रही थीं, शायद हमारा रिश्ता भी कुछ ऐसा था जिसकी छवि बरसों पहले से हमारे दिलों में बना दी जाती है रिश्ता सास–बहू का, रिश्ता नोंक–झोंक का, रिश्ता शिकवा–शिकायत का।

''क्या बात है, अजीत से झगड़ा हुआ है या फिर मायके में कुछ परेशानी है?'' नीलम ससुराल में इस अप्रत्याशित प्यार के लिए तैयार नहीं थी। उसकी आँखें भरभरा गयी बड़ी मुश्किल से उसने अपने आप को सम्भाला, क्या कहती हैं और किसके बारे में। अजीत अगर मेरे पति थे तो उससे पहले उनके बेटे भी थे।

''माँ जी, कल पापा का फोन या था मम्मी की आँख का ऑपरेशन है। वहाँ घर पर मम्मी के साथ रहने के लिए कोई नहीं है, पापा चाहते थे कि कुछ दिनों के लिए मैं वहाँ आ जाऊँ पर अजीत...!'' कहते–कहते मेरी जुबान तालु से चिपक कई। ''समझ गई, अजीत ने मना कर दिया होगा। सोचा होगा माँ अकेली रह जायेगी पर पगला दुनियादारी नहीं समझता, अरे बेटी का भी तो अपने माँ–बाप के प्रति कुछ फर्ज़ होता है। तुम चिन्ता न करो, अपना सामान पैक करो।'' कहते–कहते माँ जी मेरी कपड़ों की अल्मारी की तरफ बढ़ गईं। माँ जी ने मेरी अल्मारी खोली और मेरी साड़ियाँ निकालने लगीं।

''मेरी चिन्ता मत करो, आराम से अपने माँ–बाबू जी के साथ रह कर आना। समधी जी और समधिन जी को मेरा नमस्ते कहना।' 'मेरा बड़ा मन कर रहा था कि मैं थैंक्यू–थैंक्यू कह कर माँ जी के गले से लग जाऊँ पर मेरे ऊपर बहू की छवि का असर इस कदर हावी था, जिसने मुझे अपनी मर्यादा भंग करने से रोक लिया। मैं माँ जी को आश्चर्य से देखती रह गई पर मेरे मुँह से थैंक्यू भी निकल पाया। ''बहू जरा अपना मोबाइल देना, अभी अजीत के कान खींचती हूँ।'' माँ ने हँसते हुए कहा। मेरे चेहरे पर मुस्कुराहट आ गई। ''अजीत मैं बोल रही हूँ। किसी से टिकट भेज दो। बहू आज ही अपने मायके जायेगी।''

उधर से क्या जवाब मिला, ये तौ मैं सुन नहीं पाई पर माँ जी को ये कहते–कहते जरूर सुना। ''मैं कह रही हूँ न, तू अभी इतना बड़ा नहीं हो गया कि घर के मामले सुलझा सके बहू आज ही जायेगी। हो सके तो टिकट लेकर तुम ही आ जाना।''

मैंने अपने कपड़े अटैची में जमा लिए पर पता नहीं क्यों मायके जाने का उत्साह चेहरे पर और दिल में नहीं था। शायद जो बात मैं अजीत के मुँह से सुनना चाहती थी, वह तो इतना भी दिखावा न कर पाये। इस बात की कसक ने उसे काफी परेशान कर रखा था। जैसा कि नीलम को उम्मीद थी अजीत नहीं आये, उन्होंने ऑफिस से एक आदमी के हाथों टिकट भिजवा दिए। शायद वो नीलू का सामना नहीं करना चाहता था। इसीलिए...!

अन्ततः नीलू चार घंटे की यात्रा के बाद अपने घर अपने मायके में थी। पापा मम्मी के तो खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। मम्मी तो इसी बात से खुश थी कि नीलू इस बार ज्यादा दिनों के लिए आई है। शायद वो इस बात को भूल गई थीं, उसका ये आगमन सिर्फ उनकी आँखों के ऑपरेशन के कारण हुआ है। वो इस बात से भी खुश थीं कि इस बार नीलू की सास ने उसे खुद जाने की इजाज़त दी है। कुछ क्षण के लिए तो ये भी भूल गई थीं, उनकी आँख का ऑपरेशन हुआ। माँ का दिल ही कुछ ऐसा होता है, जो अपने बच्चों के सुख और दुःख को अपना सुख और दुःख मान लेती है।

''अरे नीलू की मम्मी आराम करो, तुम्हारी बेटी आ गई है तुम चिन्ता मत करो। सब सम्भाल लेगी हमारी नीलू।'' पापा ने मेरे सर पर हाथ फेरते हुए कहा। ये मर्म स्पर्श कितने दिनों बाद मैंने महससू किया था, पापा के स्पर्श से मुझे अचानक अपनी सास की याद आ गई। उन्होंने भी तो कुछ इसी तरह से...! मैंने घर पहुँचने की इत्तला फोन करके माँ जी को दे दी अब तक ये कार्य अजीत करते थे पर आज उनसे पहले माँ जी को बताना ज्यादा अच्छा लगा।

नीलू की देख–रेख में भावना जल्दी ठीक होने लगी।

मम्मी रोज नीलू से कहती ''जब से आई है मेरी ही देखभाल में लगी रहती है। जा अपनी सहेलियों से मिल आ।'' पर मैं कुछ भी जवाब न देती। देखते—देखते दस दिन बीत गये, मुझे भी और मम्मी—पापा को ये लगने लगा था कि अब मुझे अपने ससुराल चले जाना चाहिए। मैंने पापा से कह कर कुछ दिनों के लिए खाना बनाने वाली लगवा ली कि जब तक मैं रहूँगी तब तक वो काम समझ लेगी, जिससे मेरे जाने के बाद कोई परेशानी न हो। पर मम्मी दिन—भर नाराज होती रहतीं।

''अरे! घर में हम दो बुड्ढा—बुढ़िया के सिवा है कौन। अब मैं इतना भी न कर पाऊँ तो फिर मेरे जीने से क्या फायदा।''

मम्मी को किसी तरह समझा—बुझा कर चुप कराया, ''जब आप पूरी तरह ठीक हो जायेंगी तब हटा देना।'' तब जाकर वो कहीं शांत हुई। ''नीलू इतने दिन हो गये, तू कहीं गई नहीं, कम से कम सुषमा आंटी से तो मिल आ।'' तब मेरा भी ध्यान गया कि इतने दिनों में सुषमा आंटी मम्मी से मिलने भी नहीं आई थी। ''आई थी पर तू बाजार से मेरे लिए दवा लेने गई थी।''

मेरे कुछ कहने से पहले ही माँ ने कह दिया। मम्मी आज भी सुषमा आंटी की वफादार सिपाही थी, जो अपने मालिक पर किसी तरह की आँच नहीं आने देता। मैं यह सोच कर मुस्कुरा दी। ''ठीक है माँ! मैं सुषमा आंटी के घर चली जाऊँगी।'' ''चली जाऊँगी क्या अभी चली जा! वैसे भी यह मेरे सोने का समय है तू घर में बैठी—बैठी क्या करेगी।''

मैं समझ गई, मम्मी आज मुझे भेजे बिना नहीं मानेगी। मैं आखिर मन मार कर उठ गई। ''चलो ठीक है माँ दरवाज़ा बंद कर लों मैं हो कर आती हूँ।

''ट्रिन!'' ''आती हूँ।'' आंटी की आवाज़ आई। ''अरे नीलू!'' ''नमस्ते आंटी, कैसी है आप?'' ''आओ, आओ अन्दर आओ बेटा। कैसी हो? अजीत बाबू कैसे हैं ?''

आंटी ने सवालों की झड़ी लगा दी। मैं हँस पड़ी आंटी को अपनी गलती का एहसास हो गया। ''क्या करूँ बेटा, इतने दिनों बाद तुम से मुलाकात हो रही है न...'' ''आप बताइए न आंटी आप कैसी है ?अंकल कैसे है?'' ''सब ठीक है बेटा... अंकल ऑफिस गये हैं। अगले साल जनवरी में उनका रिटायरमेन्ट है, मेरा क्या है। ये मुआ बुढ़ापा! जोड़ों के दर्द से परेशान रहती हूँ। मुआ पैर उठने ही नहीं देता।''

आंटी बदस्तूर जारी थी। हम काफी देर तक यहाँ—वहाँ की बातें करते रहे, आंटी एक छोटे बच्चे की तरह चहक रही थीं। मेरे आने से उनके चेहरे पर रौनक आ गयी थी। खुशी बार—बार उनकी आँखों से छलक रही थीं। ''रूको बेटा, तुम से बात करने की धुन में मैं तो तुम्हें चाय—पानी पूछना भी भूल गई।'' ''नहीं आंटी, इन सब की कोई जरूरत नहीं है।''

नीलू ने कहा ...पर आंटी कहाँ मानने वाली थीं। मैं ड्रांइग रूम में अकेल बैठी रह गई। तभी मेरी नज़र वाशु और उसकी पत्नी महिमा... शायद यही नाम था उसका, उसकी तस्वीर पर चली गई। तब मेरा ध्यान गया कि इतने दिनों में मैंने माँ के मुँह से भी वाशु की चर्चा नहीं सुनी थी। आंटी इतनी देर से मेरे पास बैठी थी, जिनकी बातों की शुरूआत भी वाशु से होती थी और अंत भी। आज एक बार भी उनके मुँह से मैंने उसका जिक्र नहीं सुना था? तब तक आंटी भी चाय—नाश्ता लेकर आ गई। मैनें ट्रे उनके हाथों से ले ली। ''लो बेटा चाय पियो।'' आंटी ने बड़े प्यार से कहा, मैं चाय का आनन्द लेने लगी।

''आंटी वाशु कैसा है, कोई बाल—बच्चा है या अभी भी जिन्दगी इन्ज्वाए कर रहा है?'' आंटी के चेहरे पर एक अजीब सी नीरवता छा गई। आज तक जो चेहरा वाशु के नाम से खुशी और दर्प से जगमगा उठता था। आज उसका नाम सुनते ही इतना सुन्न क्यों हो गया ? ''ठीक है बेटा, बंगलौर में है। महिमा भी अब उसी की कम्पनी में काम करने लगी है। ज़िन्दगी में इतनी भागदौड़ है कि बाल—बच्चे पैदा करने की फुर्सत कहाँ हैं।''

''इधर आया नहीं आप लोगों से मिलने?'' नीलू ने उत्सुकता से पूछा। डेढ़ साल पहले आया था, पास के शहर में उसकी कोई मीटिंग थी, तब यहाँ भी आया था।'' और महिमा! महिमा भी तो आई होगी ?'' ''नहीं! वो नहीं आ पाई थी। उसे अपना प्रोजेक्ट पूरा करना था। वाशु का तो पैर ही नहीं टिकता। कभी अमेरिका, कभी ऑस्ट्रेलिया आता—जाता रहता है, बस नहीं आ पाता तो... ?'' आंटी कुछ कहते—कहते रूक गई।

''आप ही लोग क्यों नहीं चले जाते?'' आंटी ने बड़े निराश स्वर में कहा ''क्या जाकर करूँगी नीलू। बेटा—बहू, घर में रहते नहीं। वाशु और महिमा एक ही ऑफिस में हैं।

घर से ऑफिस दूर है, इसलिए दोनों एक साथ कार में निकल जाते हैं जितना बड़ा शहर उतने खर्चे। होने को दो–दो गाड़ी है वहाँ पर तुम्हारे अंकल को गाड़ी चलाने नहीं आती और वाशु और महिमा के पास वक्त नहीं। कब तक घर में पड़े रहे। बच्चे तो खुद ही मेहमान की तरह आते हैं और खा–पी कर सो जाते हैं। हमारे लिए उनके पास वक्त कहाँ हैं। इससे अच्छा तो हम अपने शहर में हैं, कम से कम पास–पड़ोस से हँस बोल तो लेते हैं।'' ''पर आंटी तनख्वायें तो बहुत अच्छी होंगी।''

मैंने चहक कर कहा क्योंकि वाशु की तनख्वाह आंटी की बातों में हमेशा से महत्वपूर्ण विषय रही है पर आज पता नहीं क्यों आंटी इस बात से उत्साहित नहीं हुई। शायद शादी के बाद अजीत की छोटी–सी नौकरी में अपनी छोटी–छोटी इच्छाओं का दमन करते–करते नीलू को पैसों की अहमियत समझ में आने लगी थी। ''वहाँ बंगलौर में वाशु और महिमा दो–दो गाड़ी में चढ़ रहे थे और यहाँ अंकल ने अपनी पूरी ज़िन्दगी बजाज सुपर पर निकाल दी। तनख्वाह का क्या है, नीलू आदमी को चाहिए ही क्या दो वक्त की रोटी... वो भी जब वो चैन से न खा पाये तो ऐसे पैसे का क्या फायदा। वाशु हर छठे महीने कम्पनी बदल देता है, दूसरी कम्पनी उसे हमेशा पहली कम्पनी से दस–पन्द्रह हजार रूपये ज्यादा देती है। इस घर में ही देख लो, तुम से कुछ भी नहीं छिपा है। तुम्हारे अंकल ने छोटी सी नौकरी में अपना सारा जीवन निकाल दिया। तन पर कपड़े और दो वक्त की रोटी के सिवा भगवान से कुछ नहीं मांगा। वाशु ने सारा घर सामान से भर दिया पर क्या ये सामान...?'' कहते–कहते आंटी का गला भर आया। माहौल बिगड़ता देख मैनें आंटी का हाथ अपने हाथों में लेकर उनका मूड सुधारने के लिए पूछा ''बाकी बातें छोड़िए, पहले ये बताइये वाशु मुझे खुश–खबरी कब सुना रहा है? मैं बुआ कब बन रहीं हूँ।''

मैनें जैसे आंटी की दुखती रग पर हाथ रख दिया। ''क्या बताऊ नीलू ? आज कल के बच्चे हैं, अपना भला–बुरा हम से ज्यादा अच्छी तरह से समझते हैं। एक बार मैंने वाशु और महिमा से यह बात पूछी थी पर वाशु से ज्यादा तो महिमा नाराज़ हो गई थी। क्या मम्मी आप भी, जब देखिये तो बच्चा–बच्चा किए रहती हैं। अरे अभी तो हमारी उम्र पैसा कमाने की है, बच्चे–वच्चे के लिए तो सारी उम्र पड़ी है। आप भी न जाने किस ज़माने में जी रही है। बच्चे–बच्चे के चक्कर में पड़ी तो इस शहर में दाल–रोटी का इंतजाम करना भी मुश्किल हो जायेगा। नीलू बंगलौर जाकर मैंने एक नया शब्द सुना महिमा के मुँह से... ? डिंक जानती हो इसका क्या मतलब होता है ? मैं तो तुम्हारे अंकल के सामने महिमा के मुँह से ये बात सुनकर शर्म से गड़ गई।''

''डिंक मतलब!'' मैंने आश्चर्य से पूछा, आंटी कुछ सोचने लगी। ''क्या था मुआ...! हाँ डबल इनकम नो किड्स। भाड़ में जाये ऐसी पढ़ाई और भाड़ में जाये ऐसा पैसा। आज हमने भी ऐसा सोचा होता तो तुम लोग न होते पर हम लोग तो छोटे शहर के थे और अनपढ़ थे। शायद इसीलिए ये सब सोच न पाये। आंटी के चेहरे पर एक व्यंग्यात्मक मुस्कान छा गई। आंटी ने बड़े थके स्वर में कहा ''बंगलौर में वाशु के एक पड़ोसी थे। शादी के वक्त उनसे मुलाकात हुई थी। उनके बेटा और बहू अमेरिका में रहते हैं। पिछले साल जब वाशु के घर गई थी, तब पता चला साल भर पहले उनका देहान्त हो गया। वीजा न मिल पाने के कारण उनके बेटे और बहू दाह संस्कार में शामिल नहीं हो पाये थे। छः महीने बाद जब वो मियाँ–बीवी भारत आये तब उनका अस्थि कलश नदी में प्रवाहित किया। बेचारे अंतिम समय अपने बेटे–बहू को मुँह तक नहीं देख पायें।''

आंटी को अपने भविष्य के प्रति आशंकित देख मेरा मन न जाने कैसा–कैसा हो गया। अब मेरे लिए वहाँ और बैठना मुश्किल हो गया था। ''आंटी अब मैं चलती हूँ, मम्मी की चाय का टाइम हो गया।'' आंटी ने प्यार से मेरे सर पर हाथ फेरा ''आती रहा करो, अच्छा लगता है।'' ''जी...''

यह कह कर मैं भरे कदमों से घर के बाहर निकल आई। आज अजीत के प्रति मेरा सिर श्रद्धा से झुक गया। जिन्होंने कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपनी माँ का साथ नहीं छोड़ा था। हृदय में न जाने कैसी एक अजीब सी लहर दौड़ गई और मैं पापा से कल की टिकट बुक करवाने के लिए आगे बढ़ गई। ◆

पता : लाल बाग कॉलोनी, छोटी बसही,
मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश– 231001
मो. : 9415479796

गुबार देखते रहे

❑ डॉ. महनाज़ अनवर

सुबह आंख खुलते ही सूरज की किरणें ऐसी चुभन और ख़लिश का अहसास कराती हैं जैसे सूरज सथा नैज़े पर आने के लिए सफर शुरू कर चुका हो। गर्म हवाएँ, तूफानी परिस्थितियाँ हर दिन जीवन और उसकी सभी आवश्यक चीजों को तहस नहस करने को तैयार रहती हैं। मौसम के तो मैंने अब तक पचास सफर देखे हैं, लेकिन अब यह कैसा सफर शुरू हुआ है जो बर्दाश्त के बाहर है।

हाँ, शायद अब मेरे हाथों से धैर्य की पकड़ ढीली हो रही है। मेरे हाथों की ताकत के साथ–साथ मेरी इच्छाशक्ति भी कम होती जा रही है। क्यों ना हो दोनों का संबंध उम्र ही से तो है। मैं पहले परिस्थितियों के भँवर में फंसी और फिर इस भँवर की यादों ने मेरे चारों ओर एक और आभा पैदा कर दी।

इस समय दूर–दूर तक, जहां तक नज़र जाती है, सन्नाटा है, एकांत है। वहीं अकेलापन और एक रेगिस्तान है जहाँ एक मृगतृष्णा भी मुझे गलत बहलावा नहीं दे सकती। दिल के अंदर इतनी बेचौनी, इतना शोर, इतनी सारी तस्वीरें और इतनी सारी यादें हैं कि अंदर ठहरने को दिल भी नहीं चाहता।

मैं यह चिंताजनक कहानी कहाँ से शुरू करूं? जीवन के मोह से या उस गुम से जब एक के बाद एक कड़वाहटों ने मुझे घेरना शुरू किया था।

कहानी कहीं से भी शुरू हो, अंत एक ही होगा। सब पूछते हैं कि तुम दोनों पति–पत्नी इस उम्र में इस तरह अलग–अलग क्यों रहते हो? मैं वातानुकूलित घर में कालीन पर कदम रखती हूं, लंबी आरामदायक गाड़ियों में बड़े आराम से पिछली सीट पर प्यारे–प्यारे नवासे नवासी के बीच बैठ कर बाहर घूमने भी जाती हूं, समय पर खाना मिलता है और मुझे किसी चीज की कमी नहीं होती।

मेरे पति इस आराम में नहीं रह सकते। वे पुरुष हैं ना? हम ऐसी बातें नहीं सोचते जिन्हें सोचने का अधिकार कुदरत ने हमें नहीं दिया है। उसे अपनी बेटी के घर तो दूर उस शहर में भी रहना पसंद नहीं है, कभी यहां, कभी वहां, किराए का कमरा लेकर घूमते हैं। मैंने उनका समर्थन

करने की पूरी कोशिश की, लेकिन यह उमर बडी ज़ालिम चीज़ है, ना? जीवन की अंतिम यात्रा में यह और भी क्रूर हो जाती है।

पहले हम दो कमरे के मकान में किराये पर रहते थे। दूसरे कमरे में मकान मालिक अपनी बेटी लता के साथ रहते थे। किचन और लैट्रिन बाथरूम कामन था। इसलिए हम अपनी छत की पूरी देखभाल करते थे, घर की सफाई पर पूरा ध्यान देते थे, लेकिन एक बार खांसी ने गले को जकड़ लिया तो निकलने का नाम ही नहीं लिया। मकान मालिक ने सहानुभूतिपूर्वक घर खाली करने का संकेत दिया, और इस बार घर ढूंढने में इतना समय लग गया कि हम दोनों ने अपनी–अपनी समझ से तय कर लिया कि घर बदलना एक दिन का काम है, पति ने खुद समझाया, हम पुरुषों के बारे में क्या, वह तो चार आदमियों के साथ रह लेता है तुम बेटी के साथ रहो. .. तब से हमरा बनवास शुरू हुआ।

पहले हम दो कमरे के मकान में किराये पर रहते थे। दूसरे कमरे में मकान मालिक अपनी बेटी लता के साथ रहते थे। किचन और लैट्रिन बाथरूम कामन था। इस लिए हम अपनी छत की पूरी देखभाल करते थे, घर की सफाई पर पूरा ध्यान देते थे, लेकिन एक बार खांसी ने गले को जकड़ लिया तो निकलने का नाम ही नहीं लिया। मकान मालिक ने सहानुभूतिपूर्वक घर खाली करने का संकेत दिया, और इस बार घर ढूंढने में इतना समय लग गया कि हम दोनों ने अपनी–अपनी समझ से तय कर लिया कि घर बदलना एक दिन का काम है, पति ने खुद समझाया, हम पुरुषों के बारे में क्या, वह तो चार आदमियों के साथ रह लेता है तुम बेटी के साथ रहो... तब से हमारा बनवास शुरू हुआ।

बनवास की परंपरा बेटे की है, लेकिन समय ने इसे इतना बदल दिया है कि बेटा उसने अपने माता–पिता को बनवास का चेहरा दिखा दिया था। यह कोई रूपक नहीं है, कोई प्रतीक नहीं है, यह एक तथ्य है। पता नहीं क्यों हमें लोगों की ज़िंदगी में दिलचस्पी के रंग नज़र आने लगते हैं। अपने सवालों से हमारी निजी ज़िंदगी की सच्चाइओं की जड़ों तक पहुंचना चाहते हैं लेकिन सत्य को कोई कैसे बयान कर दे? हमने इस सत्य को अपने अंदर बहुत गहराई तक छिपा रखा है। जो सोच कर डरता है। इसलिए कि हमारा एक बेटा भी है। बेटा भी कैसा? 20 वर्षों की गहन तपस्या के बाद में थक हार कर मिला था। जब उनके आने की खबर मिली तो खुशियों का अजब हाल था। उन्हें दामन में समेटने की हम जितनी कोशिश करते खुशियाँ हमसे फिसलती जाती।

ममता का यह दरिया रेशम बेटी के जन्म पर इस तरह जोश नहीं मार रहा था। यह मुझे अच्छी तरह याद है, उन दिनों तो हम अपनी बेटी के लिए घर ढूंढने के बारे में सोचने लगे थे। फिर क्या हुआ और यह सब कैसे हुआ? लेकिन विजय के आने के बाद ऐसा लगा जैसे हमने पूरी दुनिया जीत ली हो। एक–एक किलो देशी घी के लड्डू हमने हर खास और आम वर्ग को बांटे थे। फूलों की सेज पर मैंने बहुत सावधानी से उसका पालन–पोषण किया और जब शिक्षा का समय आता तो मेरे लिए स्कूल का समय काटना कठिन हो जाता। मैं कैसी दीवानी हो गयी थी।

एक केंद्र पर जीवन चारों ओर घूम रहा था। हम सभी विजय पर जान निसार किये थे। स्कूलिंग खत्म होने के बाद उनकी शिक्षा के लिए कितनी योजनाएँ बनाई गई, भारत के दूर–दराज के शहरों में अच्छे स्कूलों के नाम बताए गए, लेकिन सब कुछ तय होने के बाद भी मेरे दिल ने इसकी इजाज़त नहीं दी और सारी योजनाएँ रेत के घरौंदों की तरह ढेर हो गईं। सच बताऊं तो विजय भी किसी भी हालत में मुझसे अलग नहीं होना चाहता था। रेशम के ससुराल चले जाने के बाद विजय ही मेरे ध्यान का केंद्र था। अगर मैं चोड़ी देर के लिए भी नज़रों से ओझल हो जाती उसे अच्छा नहीं लगता था।

कैसा होनहार लायक? मुहब्बती और और बड़ों का आदर करता हमारा एक बेटा था थोड़ी सी तबीयत सुस्त देखता तो घबरा सा जाता। अपने हाथों से चाय बना कर

पिलाता। चाहते तो ये भी बहुत ज़्यादा थे, लेकिन दिखाते नहीं थे और जब वह जवान और जिम्मेदार मर्द बना अपने पैरों पर खड़ा हुआ और इंजीनियर कहलाने का लायक हुआ तो उसने पहली नौकरी की खबर दी कि मुझे जमशेदपुर में नौकरी मिल गई है। बेटे की योग्यता और महत्ता से हम दोनों की खुशियों का ठिकाना ना रहा। मगर मेरे बेटे से दूरी किसी भी हालत में संभव नहीं थी हमने कहा बेटा अगर तुम्हें नौकरी ही करनी है तो यहीं रहकर करो। चंडीगढ़ ऐसी जगह नहीं है जहां आपको नौकरी नहीं मिल सकती। इधर–उधर भटकने की जरूरत नहीं। इतना बड़ा पुश्तैनी घर है, इतना नाम है, इतनी ज़मीन है, आप बस यहाँ शान से रहो, आपको यह सब जीविकोपार्जन के लिए नहीं, केवल स्टेटस के लिए करना है और इस तरह वह नौकरी हम ने उसे ज्वाइन करने नहीं दी।

विजय ने साबित कर दिया कि अगर प्रतिभा है तो नौकरियों की कोई कमी नहीं है। चंडीगढ़ में अच्छी नौकरी मिल गयी। यदि किसी दिन उसे दफ्तर से लौटने में देर हो जाती तो मैं अपनी निराशा व्यक्त करती। जिस पर वह सफाई देते–देते परेशान हो जाता और जब तक वह अपनी बातों से मुझे प्रसन्न नहीं कर लेता, मेरा साथ नहीं छोड़ता था। विजय कहीं भी जाता, किसी से मिलते तो दिन भर की सारी घटनाओं का एक बच्चे की तरह विस्तार से वर्णन करता। जब नौकरी को एक साल पूरा हुआ तो हमने उसके लिए एक अच्छी लड़की ढूंढने में हर पल बिताया। खूब सोच समझ के देख भाल के एक पढ़ी लिखी खूबसूरत लड़की हमने अंजलि को चुना, विजय को दिखाया और उसकी राय पूछी। उसने बड़े प्यार से कहा, माँ, आप कोई पसन्द करें और मुझे यह पसंद ना आए।

एक केंद्र पर जीवन चारों ओर घूम रही थी। हम सभी विजय पर जान निसार किये थे। स्कूलिंग खत्म होने के बाद उनकी शिक्षा के लिए कितनी योजनाएँ बनाई गई, भारत के दूर–दराज के शहरों में अच्छे स्कूलों के नाम बताए गए, लेकिन सब कुछ तय होने के बाद भी मेरे दिल ने इसकी इजाज़त नहीं दी और सारी योजनाएँ रेत के घरौंदों की तरह ढेर हो गईं। सच बताऊं तो विजय भी किसी भी हालत में मुझसे अलग नहीं होना चाहता था। रेशम के ससुराल चले जाने के बाद विजय ही मेरे ध्यान का केंद्र था। अगर मैं थोड़ी देर के लिए भी नजरों से ओझल हो जाती उसे अच्छा नहीं लगता था।

हंसी के ठहाकों के साथ अंजलि बहू का डोला हमारे आंगन में उतरा। घर में चहल–पहल और रौनक बढ़ गयी। जब शादी की उथल–पुथल खत्म हुई तो रेशम भी अपने पति और बच्चों के साथ वापस लौटने लगे। बेटी तो जितनी बार मी पिता का घर छोड़ती, जाते समय उसका दिल भारी होता है और आंखें गीली होती हैं, लेकिन इस बार उसने ऊंची आवाज़ में कहा। मों को यहाँ कौन देखेगा, अब यह बहाना नहीं चलेगा। तुम मेरे पास आओ, कुछ महीने आराम से रहो और अब घर अंजलि को सौंप दीजिए। वह आप से ज़्यादा बेहतर घर की देखभाल करेगी, क्यों अंजलि ठीक है ना'

हाँ, क्यों नहीं। संभाल तो मैं लूंगी मगर मां से अच्छी तरह बिकुल नहीं' इस पर सभी हंस पड़े। रेशम भी अपने घर चली गयी।

यहां तक तो जिंदगी का ताना–बाना भी खुशी खुशी में बुना गया था, फिर एक धागा टूट गया और उसके बाद कड़वाहट ने अपना जाल बनाना शुरू कर दिया। वह दिल जो भविष्य की खुशियों का ठिकाना था, अब निराशाओं की मकड़ियाँ वहीं अपना जाल बना रही थीं। भ्रम और भय ने जबान पर चुप्पी साध रखी थी। हंसते हुए चेहरे मुँह मोड़ चुके थे। यह सिलसिला जहां से शुरू हुआ, वह भी खूब याद है। शाम को विजय और अंजलि तैयार होकर घर से निकल रहे थे हमने पूछा।

'तुम लोग कहां जा रहे हो? कुछ भी नहीं बताया और यह भी नहीं कि कितने बजे तक आयेंगे' इस पर विजय ने कुछ असमंजस से कहा 'माँ ! अब सब कुछ बताना जरूरी नहीं– और जब मैं अभी तक घर से निकला ही नहीं तो तुम्हें वापस लौटने के लिए कैसे कह सकता हूं? चाबी तो हम लोगों के पास है ना? तुम लोग सो जाना' ये जवाब हमें

पहली बार मिला था। वरना विजय कहीं जाने से पहले इजाज़त मांगता था।

उसके बाद मैंने कभी नहीं पूछा कि वे कहाँ जा रहे हैं और कब आयेंगे। बाहर जाना उन दोनों की दिनचर्या बन गई, हम भी इस व्यवहार के आदी हो गए।

हम दोनों अकेले में बैठे–बैठे पूरे समय इस विषय पर बातें करते, घबराते और डरते थे, पता नहीं किस बात से डरते और किस बात पर शर्मिंदा होते थे।

अपने दिल की बर्बादी का एक दौर हम झेल ही रहे थे कि एक दिन विजय ने यह खबर हमें सुनाई 'माँ हम मद्रास जा रहे हैं, वहीं हमें बहुत अच्छी नौकरी मिल गई है, अभी ज्वाइन करने जा रहा हूँ, शिफ्ट बाद में होंगें।

मैंने खामोश आँखों से उसकी ओर देखा और पूछा।

'तुमने बाबा को बताया?'

नहीं। मेरी हर बात आप ही बताती हैं ये भी बता दीजिएगा। वैसे अपाइमन्ट लेटर उन्होंने रिसीव किया था।'

मैंने सोचा जब्त के घूंट कितनी खामोशी से अपने गले से उतार लेते हैं। यह मुझे उन से अब सीख लेना चाहिए था और फिर कारवां गुजर गया, हम वहीं खड़े गुबारे देखते रहे। चंडीगढ़ के विशाल पुश्तैनी घर की खामोशियों में भी एक अजीब सी हलचल थी। अजीब सरगोशियों की आवाज़ें आ रही थीं। विजय की बर्थडे, नामकरण, मुन्डन समेत सभी जश्न इस विदाई हंगामे पर सवालिया निशान बने थे।

आज हमें अपनी उम्र का बोझ कुछ ज्यादा ही महसूस हो रहा था। एक दूसरे से समर्थन और सान्त्वना के सारे शब्द हमारे मन से विस्मृत हो गये। मैंने अपना सारा वज़न सोफे की पीठ पर डाल दिया और अपनी आँखें बंद कर ली। एक के बाद एक मंजर आँखों के सामने आने लगे। परेशान हो कर आंख खुली तो छाछ का एक गिलास लिए ये मेरे सामने थे।

अभी आशा के सहारे का कोई सिरा अवश्य हमारे हाथ में था तभी तो विजय ने जाते ही हमें फोन किया।

'पापा हम लोग सुरक्षित आ गये हैं, बिल्कुल ठीक हैं। माँ कहाँ हैं उन्हें बुलाए' लेकिन मेरा गला इतना भर गया कि मैंने हाथ के इशारे से इनकार कर दिया।

'बेटा विजय। माँ नहा रही है, चिंता मत करो वह बिल्कुल ठीक हैं।'

अच्छा बाबा–आप उनका पूरा ख़याल रखेंगे हम फिर बात करेंगे। ये फोन के सिलसिले भी ज्यादा देर तक नहीं चले। एक दो ट्रांसफर तो उसने हमें बताए लेकिन अब हमारे पास न तो कोई पता है और न ही कोई फोन नंबर। एक बार हमने पता लगाने के लिए बहुत प्रयास किया। तो पता चला कि उसे कंपनी ने एक साल के लिए जापान भेजा है।

फिर ना जाने हम लोगों को क्या सूझी कि चंडीगढ़ छोड़ने का फैसला कर लिया। जगह ज़मीन घर सब विजय के नाम लिख कर बैंक में केवल जमा नकदी के सहारे दिल्ली आये और छोटे–छोटे किराये के मकानों में रहने लगे। कैश जैसे–जैसे कम होता गया, हम अपने पांव समेटते गए। उसके बाद मैं बंबई बेटी के घर आ गई और वह दिल्ली में रह गए।

महीनों बीत जाते हैं और हमें एक–दूसरे की कोई खबर नहीं मिलती। एक रात अचानक दिल्ली से फोन आपा।

'चोपड़ा साहब की तबीयत बहुत खराब है। कल रात उन्हें सफदर जंग अस्पताल में दाखिल कर दिया है।'

फोन दामाद ने रिसीव किया। शायद उन्होंने रात को जगाना उचित नहीं समझा। सुबह हमारी सब फ्लाइट टिकटें बुक थीं। हमने वहां पहुंचने की जल्दी की, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। मिस्टर चोपड़ा चुप हो गए थे और हमेशा के लिए सो गए थे। सारे माया जाल से छूटटी पा चुके थे। धैर्य और संयम की प्रतिमूर्ति तस्वीर उनका चेहरा। मेरी जिंदगी के अभी कितने दिन बाकी हैं ये तो किस्मत जाने, लेकिन कुदरत बताएगी कि कौन से दिन देखना बाकी है, अब ये डर पूरी तरह से दिल से निकल चुका है।

बाहर फिर, आंधी और तूफान उठा है। आज सूरज एक स्तर नीचे चला गया है। गर्मी से मेरा दम घुट रहा है, लेकिन अब मैं फितरत के दाँव पेंच से पूरी तरह आज़ाद हो और अब मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे मुझे छिन जाने का डर हो। अब सिर्फ एक जान गले में अटकी है, वह देने लिए हर लम्हा तैयार हूं। ◆

पता : 529/897–ए, पंचवटी कॉलोनी,
रहीमनगर, लखनऊ–226006
मो. : 6393456500

रेणुका अस्थाना की कविताएँ

रेणुका अस्थाना

खुली खिड़कियाँ

देख रही हूँ वीरान सड़कें
बन्द दरवाज़े और कहीं–कहीं
खुली खिड़कियाँ
जो,जीवन होने का विश्वास हैं।
विश्वास है–
खिड़कियों के पार
अधूरी हँसी का खिलखिलाना
कोने–कोने घर को सजाना
बंद सपनों की छाया को हिलाना
और दूर कहीं घर को जाते पैरों का अनवरत चलना।
ये खुली खिड़कियाँ संजो रही हैं
धीरे–धीरे
बरसों के उधड़े रिश्ते
टाँक रही हैं गाँठें
जो फट रही थीं
आधुनिकता की कठोरता से
सिमट रही थीं
गैजेट्स पर भटकती उँगलियों
के भटकाव से
कहीं मर जाने को तो

कहीं मिट्टी में समा जाने को।
ये खुली खिड़कियाँ–
एक आशा जगा रही हैं
अनवरत चलते पैरों को, अपनों के बीच पहुँचने का
अपनों के बीच, दो सूखी रोटी की
तृप्ति का
प्रतिदिन भागते जीवन के बाद
ठहरे समय में उँगलियों से बंधी
उँगलियों की बेचैनी का
माँ के भीतर की निःशब्द
ममता का
और अपनी दीवार को अपनी दीवार समझने के
आत्मचिंतन का।
ये खुली खिड़कियाँ
एक विश्वास दे रही हैं
इस सन्नाटे में जीवन के होने का–

वो कौन है

वो कौन है, जो उतारता है
सूर्य के प्रकाश को
वो कौन है, जो साधता है
ढलती गहन रात को।

वो कौन है, जो नित नई
नटी सा ताल बांधता
अदृश्य हो के तानता है
नित नए वितान को।
शब्द को निःशब्द करता
अर्थ घोलता कभी
और अर्थ के कभी
अनर्थ रूप टाँकता।

रोज़ भरे सुख के थाल में
सहेजे दुःख के फूल
कौन है जो दुःख में कभी
सुख के बीज डालता।

पलट के आँधियों के वार
सहज सरल स्नेह से
हज़ारों रंग से रंगी
है तूलिका बिखेरता।

वो कौन है जो
आशा और निराशा के मध्य रेंगता
सिकोड़ता समय को
अपने हाथ में मरोड़ता।

पकड़ के अश्व जीन सा
हमें धरा पे हांकता
अदृश्य हो के, डोर
अपने हाथ में सँभालता
वो कौन है–

मेरी प्रार्थना

क्यों मेरी प्रार्थनाएँ
ठहर जाती हैं
तुम्हारे पास आकर के
क्यों आँखें बंद हो जाती हैं,
दीए की लौ छिपा कर के।
तुम्हारे हाथों में बंधती मेरे हाथों
की तकदीरें
दीए की लौ को थामे
आचमन में डूब जाती हैं।
तुम्हारे हाथ को छूकर
कभी जो आरती की थी
तुम्हारे कांधें पे झुक कर
कभी जो मन्नतें की थीं
ये साँसें आज भी
निःशब्द वह पल माँगती हैं
मेरी हर प्रार्थना के रूप में
तुम सामने मेरे
मेरी हर प्रार्थना बस तुम ही तुमको
माँगती हैं
ये आकर ठहर जाती हैं
तुम्हारे पास ही हरदम
ये आँखें बंद होकर
बस तुम्हीं को माँगती हैं

ओ शब्द !

आग्रही हूँ शब्द तुमसे
याचना है चुप रहो तुम
खोल कर गाँठों की साँकल
भावना में मत बहो तुम
चुप रहो और थाम लो
संघात है जो हो रहा
तोड़ दो उन आहटों को
जो समय को छल रहा

चुप रहे जो तुम, तो मन
थम जाएगा थामे तुम्हें
तोड़ सारे मन के गुंठन
थाम लेगा वो हमें
वर्ष–वर्षों से पले
सारे समय ढह जाएँगें
चुप रहे जो तुम तो
हम अपना समय जी जाएँगें।

चुप रहो तुम..., शब्द....
अब अपने को मुझको बांधने दो...

◆

पता : एल 2/207, आशियाना आंगन,
भिवाड़ी (अलवर), राजस्थान–301019
मो. : 9982448126

अलका अस्थाना की दो कविताएँ

डॉ. अलका अस्थाना
'अमृतमयी'

बीच प्रकृति

ऊपर दिखते चांद सितारे
नीचे ठंडे पांव हैं।
सर्द हवा के झोंके ठहरे,
बिछते छाले घाव हैं।

कुछ मीठे लगते हैं सपने,
अलसायी गर्मी के बादल।
ओढ़ ली मैंने ऊनी चादर,
सुन्दर मौसम से हैं घायल
बीच प्रकृति के खड़ा रहा तो
ये तो अर्न्तभाव है।
झूल रही है पवन ये पागल,
मुझे बुलाती एक इशारा ।
हारा हारा मैं तो हारा,
प्रेम पथिक हूं मैं प्यारा।
याद दिलाती स्मृतियों में
मिली चांद की छांव है।

चलो आज तुम हाथ पकड़ के,

छलकी नयनों की गागर।

नीर बहा के तेरे खातिर।

ठहरें थोड़ा अरे !मुसाफिर,

हम सब मिलते हैं नित प्रति,

सबका ये समभाव है।

सुनहरे गुथे संग

रेखाओं से घिरे थे भाव

भाव में मिले हैं रंग।

कुछ खट्ठे –मीठे से

सुनहरे गुथे संग

स्वीकार की प्रतिमा थी,

नयनों में अनुराग,

तुम हो दूर पर भी,

स्पर्श स्वासों का विराग

झील में तैरते हुए हंस

पुकार रहे हैं मंद –मंद

मोतियों से बना है

व्यक्तित्व

झूलते–उड़ते बुलाते

नीली–पीली नारंगी गुलाबी

ये सब है सतरंगी धनुष

भीगते प्रेम से स्वच्छंद

एक डोर से बंधा है,

वो बंद सा लूप।

कागज़ में सिमटे झरते,

हर श्रृंगार में पुष्प से ।

ताज़े खिले ख़ुशबू से

मिले हैं हमारे अंतरंग ।।

◆

पता : 356/24, आलम नगर रोड, बावली चौकी, लखनऊ–226017

मो. : 8934884441

भूल सुधार–
हमें खेद है कि मार्च 2024 के अंक का आवरण पृष्ठ अर्चिता मिश्रा का था जो कि भूलवश अन्तरिक्ष के नाम से प्रकाशित हो गया है। कृ. मार्च 2024 का कवर अर्चिता मिश्रा का ही समझा जाये।

–सम्पादक

च्यवन चरित : एक पौराणिक पुरोधा को रेखांकित करता महाकाव्य

❑ त्रिवेणी प्रसाद दूबे 'मनीष'

च्यवन चरित हिन्दी के वरिष्ठ रचनाकार डॉ. सत्यदेव प्रसाद द्विवेदी 'पथिक' द्वारा पौराणिक काल के च्यवन ऋषि के चरित्र पर रचित महाकाव्य है। यह इनका तीसरा महाकाव्य है। इसके पूर्व इनके दो महाकाव्य 'भारतीयम्' और 'मख क्षेत्रे मनोरमा' प्रकाशित हो चुकें। अब तक इनकी कुल अठठारह कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

डॉ. सत्यदेव एक अनवरत छंद साधक हैं। वे निरंतर नवीन विषयों पर शोधात्मक सृजन में रत रहते हैं। उनका अद्यतन महाकाव्य 'च्यवन चरित' उनके इसी विशेष आचार का साहित्यिक उत्पाद है। जिस पौराणिक ऋषि के सम्बन्ध में अधिकांश लोग एक छोटा सा प्रस्तर भी कठिनाई से लिख पायेंगे उस पर एक महाकाव्य का सृजन डॉ.सत्यदेव के अद्वितीय साहित्यिक कौशल का परिचायक है।

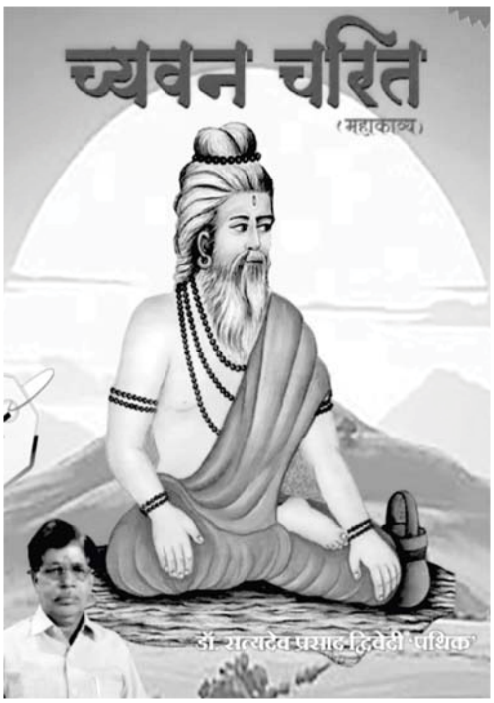

'च्यवन चरित' महाकाव्य में कुल त्रयोदश सर्ग हैं। इसका प्रारम्भ मंगलाचरण सर्ग से होता है। इस सर्ग में महाकवि द्वारा ब्रह्म, उनकी आह्लादिनी शक्ति, गणपति, वाणी, गंगा, सरयू, कावेरी, हनुमान, व्यास, वाल्मीकि, पाराशरादि ऋषियों तथा वेद–पुराण–आर्षग्रंथों की वंदना की गयी है। पुरुषोत्तम श्रीराम पर रचित निम्न गंगोदक छन्द विशेष अवलोकनीय है–

"राम आदर्श राजा, पिता पुत्र हैं,
बंधु हैं धैर्य औ' शान्ति का रूप हैं।
शक्ति औ' शील सौन्दर्य व्यक्तित्व हैं,
उष्णता में भरे नीर के कूप हैं।
त्याग में भोग का क्षेत्र विस्तार है,
सृष्टि में राम तो भूप के भूप हैं।
भाव जैसा धरें रूप वैसा दिखे,
राम छाया कहीं, तो कहीं धूप हैं।।"

(छंद संख्या 60)

द्वितीय सर्ग, परम विख्यात तमसा के माहात्म्य एवं लोकमंगलकारिता से सम्बन्धित है। इस सर्ग का निम्नांकित प्रथम छन्द जो दुर्मिल सवैया में है, स्वतः ध्यान आकर्षित करता है–

"सरयू दिशि दक्षिण है तमसा,
मिलि औधपुरी छवि छाजत है।
घिरि जंगल मंगल हैं करतीं,
जलवायुन के सुख साजति है।
तट आश्रम सिद्धि तपस्वी बसे,
तप तेज प्रभा सुविराजति है।
सब जीव स्वछन्द हिये विहरें,
जहँ नंदन की छवि लाजति है।।"

(छंद संख्या 1)

तृतीय सर्ग में ऋतु वर्णन के अंतर्गत प्रकृति का मनोरम वर्णन है। यह सर्ग वर्तमान युग में बहुत प्रासंगिक है क्योंकि इसमें कवि ने पर्यावरण प्रदूषण की ओर संकेत करते हुए उसके निवारण की आवश्यकता पर विशेष बल दिया है। एक छन्द है–

"मेघ आकाश में घूमते ढूँढ़ते,
गर्जते पूछते क्या हुई बात है।
प्यास के त्रास में धैर्य को तोड़ते,
नीर संत्रास में ये हुई घात है।
ताल पाताल में नीर का क्या करें,
सूखते से दिखे नेत्र को ज्ञात है।
नीरदाता चले नीर को खोजने,
नीर से ही धरा ज़िंदगी प्रात है।।"

(छन्द संख्या 2)

चतुर्थ सर्ग में महाकवि ने सनातन ऋषि की परम्परा पर प्रकाश डाला है जबकि पंचम सर्ग ऋषियों के प्रदेय को विवेचित करता है। ये दोनों सर्ग आज की नई पीढ़ी के लिए ज्ञानवर्द्धक और उपयोगी हैं। चतुर्थ सर्ग का प्रथम छंद विशेष अवलोकनीय है–

"ऋषियों वाली यह पुण्य धरा,
यम नियम तपस्या तेज़ वरा।
प्रकृति प्रज्ञता वैभव इनका,
अन्तस का कल्मष निपट जरा।।"

(छन्द संख्या 1)

इसी प्रकार सर्ग 5 का अंतिम छंद ऋषियों के प्रदेय का कुशल रेखांकन करता है–

"लोभ औ' मोह में ना करो कर्म को,
बुद्धि संकीर्ण जो वो कहाँ जानता।
कींच में पाँव जो एक होता पड़ा,
दूसरे भी पड़े हैं यही ठानता।
होशियारी नहीं चालबाज़ी नहीं,
वो छिपा आपमें है सभी जानता।
जो कहे वो करो है इसी में भला,
किन्तु होता हठी वो कहाँ मानता।।"

(छंद संख्या 70)

आगे के सर्गों में महर्षि च्यवन के जीवनचरित का रोचक एवं रसात्मक वर्णन है।

'च्यवन ऋषि का जन्म' शीर्षक षष्ठम सर्ग के निम्नांकित दो छन्द महर्षि के जन्म का आभास कराते हैं:

"सूकर जलकर राख बना तब,
ब्रह्म तेज़ साकार हुआ जब।
ठहरा कौन तेज़ के आगे,
तपो तेज़ साकार हुआ तब।।

(छन्द संख्या 24)

यही च्यवन ऋषि कहलाये हैं,
मातु पुलोमा सुत जाये हैं।
पूर्व प्रसव ही प्रकट हुए हैं,
तपो तेज़ में जग छाये हैं।।"

(छन्द संख्या 25)

सप्तम सर्ग में 'ब्रह्माचरण और तपस्वी जीवन' शीर्षक से महर्षि च्यवन से सम्बन्धित विशिष्ट तथ्य प्रस्तुत हैं। सर्ग के निम्न छन्द विशेष विचारणीय हैं–

"च्यवन ऋषि की आठ सिद्धियाँ,
तप के बल पर उन्हें मिली थीं।
ऐसी सिद्धि इस धरा पर,
इससे पहले नहीं पली थी।।

(छंद संख्या 42)

प्रथम सिद्धि जो धार दिया था,
अनाहत चक्र पार किया था।
कुण्डलनी जागरण किया था,
जाग्रत स्वरूप सदा जिया था।।

(छन्द संख्या 43)

कालचक्र से किया वापसी,
वृद्ध से च्यवन युवा हुए थे।
चन्द्रमा चक्र औ कालचक्र,
निज को सेतु सदृश लिये थे।।

(छन्द संख्या 44)

काया छिपी कृश हुई लेकिन,
नहीं योग में आयी बाधा।
घोर तपस्या किया च्यवन ने,
योग लक्ष्य संयम ने साधा।।

(छन्द संख्या 55)

च्यवन–सुकन्या नामक अष्टम सर्ग के प्रथम छन्द में वन में सखियों सहित विचरती राजकुमारी सुकन्या के सुरम्य रूप एवं पुलकित मनोदशा का रेखांकन श्लाघनीय है–

"विहरैं वन बीच उलीच हिये,
सब साथ अकाश चढ़े हुए हैं।
मन भाव सुभाव खिले मुख पे,
दृग चंचल चाल चले हुए हैं।
जहँ चाह भरी वहँ राह भरी,
पद ज्यों मन पाठ पढ़े हुए हैं।
निज लक्ष्य सुदक्ष प्रवीन लगीं,
सबको मनु काम गढ़े हुए हैं।।"

(छन्द संख्या 1)

इस सर्ग का निम्न अंतिम छन्द भी ध्यातव्य है–

"एक दूजे के लिए जो भरा प्रेम हो,
एक से जो दिखे धर्म सौन्दर्य है।
लक्ष्य में भाव कल्याणकारी भरा,
पूज्य की भावना कर्म सौन्दर्य है।।
बात खाँचे ढली रूप साँचे ढली,
योग की साधना तर्क सौन्दर्य है।
साधना साध्य में जो समावेश हो,
क्षेत्र सादृश्य हो शर्त सौन्दर्य है।।"

(छन्द संख्या 150)

महाकाव्य के नवम सर्ग में महाराज शर्याति के रथ का वर्णन बड़ा ही प्रभावी बन पड़ा है–

"अश्व जो हैं जुते श्वेत के वर्ण हैं,
प्राप्त आदेश को खड़े कान हैं।
चार संख्या भरी चाल की तीव्रता,
रेशमी साज–सज्जा जड़े शान हैं।
स्पंदनों से जुते भाँप लेते दिशा,
डोर आदेश प्रस्थान संधान हैं।
है रथारूढ़ शर्याति शोभा बढ़ी,
अश्व का यान ये वंश की शान है।।"

(छन्द संख्या 1)

इस सर्ग के समापन में कवि ने अपने विशेष गंगोदक छन्द के माध्यम से किया है–

"संग जैसा मिला सोच वैसी बनी,
जान औ' बूझ के संग साथी चुनो।
कर्म पे ध्यान दो धर्म पे ध्यान दो,
आँख को खोल के वृत्तियों को गुनो।
जो बुरे कर्म हैं कष्ट देते सदा,
अंत सत्कर्म की भाव माला बुनो।
त्याग दो त्याज्य है जो सभी के लिए,
है सभी ईश संतान धारा धुनो।।"

(छन्द संख्या 57)

दशम सर्ग में 'च्यवन का प्रदेय' रेखांकित करता प्रथम छन्द विशेष प्रासंगिक है–

"त्याग औ' तेज से सिद्धि की प्राप्ति थी,
मंत्र की शक्ति पे शस्त्र को भान था।
अग्नि या वारि की बाण वर्षा करे,
शास्त्र की युक्तियों का भरा ज्ञान था।
शस्त्र औ' शास्त्र में शास्त्र ही श्रेष्ठ था,
शास्त्र में शस्त्र का भी दिशा ध्यान है।
ब्रह्म के ज्ञान को प्राप्त वर्चस्व था,
ज्ञानियों का दिशा बोध में मान था।।"

(छन्द संख्या 1)

महाकाव्य का एकादश सर्ग 'अध्यात्म' शीर्षक से विशिष्ट आध्यात्मिक तथ्यों की प्रस्तुति करता है।

सर्ग के प्रथम छंद का अवलोकन आवश्यक है–

"यहीं जन्म की भूमि तेजस्वियों की,
यहाँ गंग की धार भी पावनी है।
यहीं ध्यान में ब्रह्म की धारणा की,
बही भाव धारा लगी लावनी है।।
यही विश्व की श्रेष्ठ नैसर्गिकी है,
तथा वृष्टि की धार भी सावनी है।
यहीं श्रेष्ठ वीरों व्रती की धरा है,
यहाँ विश्व सिंहों सजी छावनी है।।"

(छन्द संख्या 1)

इस सर्ग का निम्नांकित अंतिम छन्द एक सकारात्मक सामाजिक संदेश का प्रसारण करता है–

"राष्ट्र रागी बनो हेतु त्यागी बनो,
शास्त्र आदेश में राष्ट्र की सर्जना।
राष्ट्र ही मूल हो माथ पे धूल हो,
पावना देश में राष्ट्र की चन्दना।।
भाव में राष्ट्र हो चाव में राष्ट्र हो,
हो मतादेश में राष्ट्र की अर्चना।
राष्ट्र भी देव है सर्वथा सेव है,
वेद संदेश में राष्ट्र की वंदना।।"

(छन्द संख्या 46)

महाकाव्य का द्वादश सर्ग 'सत्य सनातन' शीर्षक से अनेक सनातनी सत्य प्रस्तुत करता है।

सर्ग का निम्नांकित प्रथम छंद देखें–

"ब्रह्म के ध्यान औ' स्वास्थ्य की दृष्टि से,
योग आयाम ही मुख्य आधार है।
जोड़ को मोड़ना साधना ग्रंथि की,
साँस से फेफड़े का खुला द्वार है।।
अंग प्रत्यंग की शक्ति की वर्धनी,
ये क्रिया रूप में देह से प्यार है।
योग से है मिली कौशली दक्षता,
जो करे ज़िन्दगी वर्ष सौ पार है।।"

(छन्द संख्या 1)

महाकाव्य के अंतिम सर्ग में 'उपसंहार' शीर्षक से बासठ छन्द समाविष्ट हैं। सर्ग का अंतिम छन्द विशेष अवलोकनीय है–

"ज्ञान का यज्ञ है भान का यज्ञ है,
आस विश्वास के मान का यज्ञ है।
खोलता ज्ञान भंडार के द्वार को,
है कृपा भाव जो बुद्धि का अज्ञ है।।
संत माहात्म्य की भाव धारा बही,
बूझता है वही जो धिया तज्ञ है।
ग्रंथ को सौंपता सर्वथा भाव से,
प्राणि जो सच्चिदानंद का प्रज्ञ है।।"

(छन्द संख्या 62)

'च्यवन चरित' काव्यकृति महाकाव्य के सभी लक्षणों से युक्त है। नियोजित सर्गबद्धता के साथ–साथ इसमें महान चरित्र, ऋतु वर्णन, नगरों एवं मंदिरों का वर्णन, राज्य वर्णन, न्याय व्यवस्था, जीवन मूल्यों इत्यादि के वर्णन का सुन्दर समावेश है। इस काव्यकृति में सभी काव्य रसों की

अभिव्यक्ति है। शांत रस इसका अंगी रस है। कृति के प्रारम्भ से अंत तक मानवतावादी दृष्टिकोण की प्रधानता है।काव्य गुणों की दृष्टि से इस कृति में प्रसाद, माधुर्य तथा ओज का विनियोग कुशल रूप में हुआ है जो पाठकों और श्रोताओं के लिए आनंददायक है। अलंकार–प्रयोग की दृष्टि से भी यह महाकाव्य बहुत समृद्ध है। इसमें शब्द और अर्थ से सम्बन्धित अनेक अलंकारों का सहज उपयोग हुआ है। कृतिकार को चरित्रों को आदर्श और यथार्थ के उच्च धरातल पर चित्रित करने में पूर्ण सफलता मिली है। कृति में मात्रिक एवं वर्णिक छंदों का उत्तम प्रयोग हुआ है।सर्वाधिक गंगोदक सवैया का प्रयोग हुआ है पर उसके अतिरिक्त दुर्मिल सवैया, सुंदरी सवैया, मदिरा सवैया आदि का भी कुशल प्रयोग हुआ है।

यह काव्यकृति पुनः इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि डॉ.सत्यदेव प्रसाद द्विवेदी 'पथिक' जी गंगोदक सवैया के सम्राट हैं।

इस महाकृति की एक विशेषता यह भी है कि इसमें कृतिकार का प्राक्कथन 'यात्रा वृत्तांत' के रूप में विद्यमान है जिसका शीर्षक 'जब च्यवन ने गर्भ से च्युत होकर माता की रक्षा की' अत्यन्त सहजता से एक पौराणिक सत्य को प्रसारित करता है। इस प्राक्कथन को पढ़कर कृतिकार की नैसर्गिक यायावरी और उनके गहन अध्ययन तथा शोधी प्रवृत्ति का सुबोध होता है। उन्होंने इसमें च्यवन ऋषि को प्राप्त ऐसी आठ सिद्धियों का उल्लेख किया है जो किसी भी अन्य ऋषि को प्राप्त नहीं थीं। इस तथ्य का महाकाव्य में भी सुंदर समावेश हुआ है। उनके द्वारा किया गया तमसा नदी की सुषमा और महिमा का वर्णन श्लाघनीय है। कृतिकार द्वारा इस तथ्य को भी रेखांकित किया गया है कि "च्यवन ऋषि सूर्यवंशी राजाओं की न्याय व्यवस्था, धर्माचरण, मर्यादा, प्रजावत्सलता, सत्यप्रियता, वचन बद्धता, समान भागीदारी, स्वास्थ्य के प्रति सजगता आदि को भली भाँति जानते समझते और स्वीकार करते थे। अयोध्याराज के राजकीय वैद्य च्यवन ऋषि के आश्रम में आते थे। जड़ी बूटियों, स्वास्थ्य संबंधी सम्पूर्ण जानकारी च्यवन ऋषि से प्राप्त करते थे। प्रजा भी स्वास्थ्य संबंधी परामर्श लेने और जड़ी–बूटियों को प्राप्त करने आश्रम में आती थी। च्यवन के ज्ञान, अनुभव का राजा सम्मान और उपयोग करते थे।"

कृति को 'च्यवन–चरितः एक दृष्टि' शीर्षक से साहित्य भूषण डॉ. उमाशंकर शुक्ल 'शितिकंठ द्वारा लिखित प्रस्तावना का प्रसाद भी प्राप्त है। उनके अनुसार 'भारतीय सभ्यता और संस्कृति के महान आलोक–स्तम्भ–ऋषि च्यवन जैसे उदात्त व्यक्तित्व पर केंद्रित यह अनुसंधानपूर्ण महत् प्रबन्ध काव्य विविध लोक–मांगलिक स्वरों से उद्भासित है।'

इन महाकृति की भूमिका विद्वान प्रोफेसर डॉ. हरिशंकर मिश्र जी द्वारा लिखी गयी है। डॉ. हरिशंकर के शब्दों में 'च्यवन ऋषि को आधार मानकर अभी तक इतनी विविधयामी रचना दृष्टिगत नहीं हुई है।'

महाकृति 'च्यवन चरित' का आवरण संदेशयुक्त है। उसमें विद्यमान ऋषि की विशिष्ट मुद्रा पौराणिक काल में निहित आध्यात्मिक चिन्तन का बोध कराती है। कृति के अंत में समाविष्ट 'गणाधार सवैया और उसका व्याकरण' तथा 'घनाक्षरी और उसका व्याकरण' उसके पठन–पाठन को सुगम बनायेगा। कृति का मूल्य रुपया सात सौ पचास मात्र है जो इस महाकृति की गहनता के समतुल्य प्रतीत होता है। यह कृति किसी भी छन्द–प्रेमी और महाकाव्य अनुरागी को सहज रूप से आकर्षित करेगी। इसके अतिरिक्त इसमें छन्दों के प्रति लगाव को उन्नत करने की भी पर्याप्त क्षमता है। निस्संदेह यह कृति डॉ. सत्यदेव प्रसाद द्विवेदी 'पथिक' का मानव–समाज को प्रदत्त एक दुर्लभ साहित्यिक उपहार है जिसका सुधी प्रयोग और उपयोग मानवता का पाठ पढ़ाते हुए पौराणिक–काल के कालजयी तत्वों से भिज्ञ बनायेगा। ◆

पुस्तक : 'च्यवन चरित' (महाकाव्य)
लेखक : डॉ. सत्यदेव प्रसाद द्विवेदी 'पथिक'
प्रकाशक : शतरंग प्रकाशन, लखनऊ–226001
मूल्य : 750 रुपये सजिल्द

पता : 3/98, विपुलखण्ड, गोमती नगर, लखनऊ–226010
मो. : 9452242469

उर्वशी उपाध्याय की कविता

मैंने देखा है...

हाथों को यूं ही क्यों
असहाय छोड़ रखा है
पत्थर हैं,
दूर—दूर तक सामने तुम्हारे
सो, तुम निष्क्रिय हो गये!
उठो—चलो—संग स्वयं के
विश्वास का हथियार लो,
मैंने,
वीराने को उपवन होते देखा है।

पत्थर में दूब जमे—न सही
चहको और महको
जग को सुगन्ध दो,
मैंने,
कोयले को भी कुन्दन होते देखा है।

अगर तुम्हें पसंद हो
सूरज को तुम चंदा कहो,
पर, न डरना तुम जहाँ से
पूरब को जब पश्चिम कहो,
मैंने,
उसके पागलपन को जनमत होते देखा है।

यूं ही वो रोता रहा था
फूलों को लिए हुए
मुस्कुराना हार कर भी
तुम काटों के बीच में
मैंने,
तपते मरुथल को सतलज होते देखा है।

भविष्य की कोख में
किलकारियां जो दफ्न सी हैं
क्यूं आंखों में निर्जन सपने..
फुलवारियां बदरंग नहीं हैं
मैंने,
निर्जन से उस वन को,
मधुबन होते देखा है।

हम साथ चले थे बहुत दूर
नदी के किनारों की तरह,
रुक गयी थी सोचकर
सान्निध्य....

◆

पता : किदवई नगर, अल्लापुर,
प्रयागराज—211006
मो. : 9935533839

भारत सरकार के रजिस्ट्रार आफ न्यूज पेपर्स की रजिस्ट्री संख्या 33122/78
भारतीय डाक विभाग की डाक पंजीयन संख्या–एल.डब्लू./एन.पी. 432/2006

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रमुख प्रकाशन

उत्तर प्रदेश मासिक : समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार की मासिक पत्रिका समूल्य उपलब्ध एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।

नया दौर (उर्दू) : सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विषय की एक उर्दू मासिक पत्रिका, एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।

वार्षिकी (हिन्दी/अंग्रेजी) : उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के विस्तृत आंकड़ों एवं सूचनाओं का वार्षिक विवरण मूल्य रु. 325/– मात्र।

महत्वपूर्ण प्रकाशनों के लिए सम्पर्क करें

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र.
दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
उत्तर प्रदेश के समस्त जिला सूचना कार्यालय

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. स्वत्वाधिकारी के लिए शिशिर, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ द्वारा प्रकाशित तथा प्रकाश पैकेजर्स, लखनऊ में मुद्रित